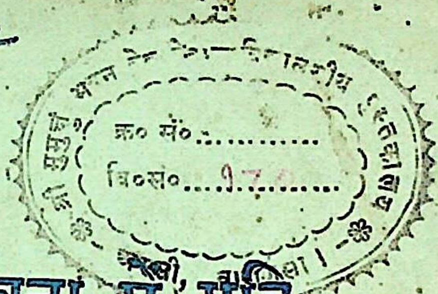


रचना में गति

लेखक—
श्रीस्वामी सच्चिदानन्द सरस्वतीजी महाराज

१



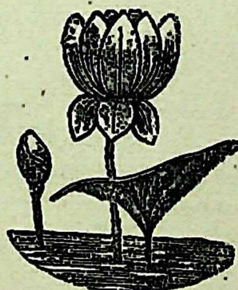
प्रकाशक—
विश्व शान्ति संघ
१००, हरध्यानसिंह रोड, करौलबाग, दिल्ली।
[...म संस्करण २०००]   [सम्वत २००१

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

रचना में गति

लेखक—
श्रीस्वामी सच्चिदानन्द सरस्वतीजी महाराज

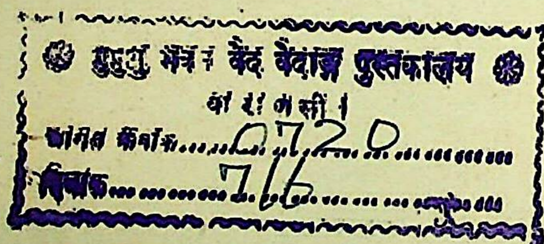
१



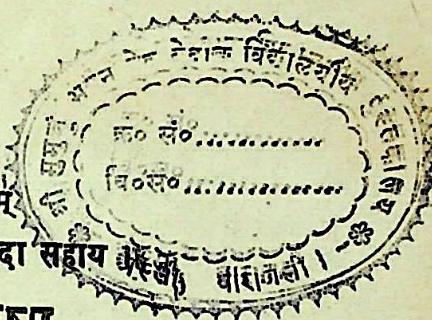
प्रकाशक—
विश्व शान्ति संघ
१००, हरध्यानसिंह रोड, करौलबाग, दिल्ली।
प्रथम संस्करण २०००] [सम्वत् २००६

प्रकाशक—
विश्व शान्ति संघ
१०० हरध्यानसिंह रोड,
करौलबाग़, दिल्ली।

प्रथम संस्करण २०००, १९५२ ई०।



मुद्रक
एक्सलसियर प्रिंटिंग प्रेस,
नई सड़क, देहली।



ओ३म्

सच्चिदानन्द सदा सहाय

प्रेम-पुष्प

भूमिका

"वह पालनहार अनन्त प्रभु, जिसका एकमात्र सहारा है।
उसकी जयकार सदा रहती, उस पर सब जग बलिहारा है॥
प्रेम-पुष्पाञ्जलि॥

१. उस अनन्त पालनहार पर एकान्तिक आसरा रखने वाले धन्य हैं। दाता का भण्डार नित्य भरपूर है। वह खुले हाथों दे रहा है। प्रेमी! अपने हृदय पात्र को प्रभु के अभिमुख रखो और उसमें अमृत भरने दो। सर्वोत्कृष्ट उपहार तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हैं। भगवान के प्रसाद से मुंह न मोड़ो॥

२. परमार्थलाभ करने की तीव्र उत्कण्ठा तथा अभिरूचि के कारण अनेक मतमतान्तरों की गम्भीर खोज, उनके पवित्र ग्रन्थों के गूढ़ अध्ययन, श्रवण-मनन-निदिध्यासन, तत्त्वदर्शी आचार्यों के अमृत उपदेश और साध-सन्तों के सत्संग के फलस्वरूप साधनों का सौभाग्य प्राप्त होने से, कमाई के निजी अनुभवों को जिज्ञासुओं के प्रोत्साहनार्थ, इस छोटी पुस्तक में उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है॥

३. नन्हा बालक दृश्य जगत का रसपान करता है। उसको सृष्टि की सत्ता और अपने अस्तित्व का पूर्ण विश्वास है। परन्तु, वह अपने भावों को तुतली जिह्वा से प्रदर्शित करने का ही प्रयत्न कर सकता है। उपस्थित ग्रन्थ भी उस परम पिता के नन्हे से पुत्र की टूटी-फूटी परमार्थी बात चीत है॥

४. उंगली के सहारे चलने वाले बालक को प्रतिक्षण अपने समर्थ पिता की सहायता का एकमात्र अवलम्बन होता है। उसकी दृष्टि, अन्धकार में प्रकाश करने वाली उस देदीप्यमान ज्योति पर लगी रहती है। उसी से आशा है। उसी का आश्रय है। परमार्थ जैसे अनन्त विषय को सविस्तार लिखने की योग्यता एक बालक में कहां हो सकती है? प्रभु-प्रसादित ज्ञानधारा को ही जैसे का तैसा लेखनी बद्ध करने का प्रयासमात्र किया है। शब्द कहां है जो लिख सकें। अनुभव में वर्णन शक्ति नहीं रहती। अतः संसार के प्राचीन तथा प्रतिष्ठित विचार प्रवाह की 'लकीर की फ़कीरी' न करके परमार्थ तत्व को सत्यतापूर्वक जैसे-तैसे शब्दों में समर्पण कर दिया है॥

५. सनातन रूढ़ियों को त्याग कर शुद्ध सत्य मर्त्यलोक के द्वार पर खटखटा रहा है। 'द्वार खोलो! अज्ञान और अन्धविश्वास का युग बीत गया। प्राचीन रीतियां शनैः २ इस मण्डल से प्रस्थान कर रही हैं। विश्वास का प्रथम सोपान अज्ञान नहीं है। भली भांति समझे बिना धर्म की शिक्षा तथा आज्ञाओं का पालन करना कठिन है'। प्राचीन पूर्वज अति श्रद्धालू होते थे। महापुरुषों की पवित्र रहनी-गहनी का ही उन पर इतना गहरा प्रभाव हो जाता था कि वे बिना 'किन्तु-परन्तु' के ही उनके प्रदर्शित मार्ग पर चलने लगते थे। समय परिवर्तनशील है। पवित्र ग्रन्थों की भाषा बोलचाल की भाषा नहीं रही। जिज्ञासुओं में समझने की योग्यता का भी ह्रास हो रहा है! तत्वज्ञानी गुरुओं का प्रायः अभाव ही है। अतः आधुनिक जनता को प्राचीन ग्रन्थ केवलमात्र टेक और पक्षों की अटकों से भरपूर, कपोल-कल्पित गाथाओं तथा विनोदात्मक अनहोनी कथाओं के कौतुहल-पूर्ण रद्दी के ढेर दिखाई देते हैं। अन्वेषणानुराग प्रतिदिन वृद्धि पर है। अतः यह युग परमार्थ सम्बन्धि प्रत्येक बात का व्यवहारिक तथा वैज्ञानिक प्रमाण यथोचित युक्ति सहित पाश्चात्य विचारधारा के अनुरूप चाहता है। यह अभिलाषा आकस्मिक

नहीं है वरन् मानव समाज की जन्मान् जन्म की सर्वोत्कृष्ट तथा उच्च-तम-भेदों की खोज, प्रयत्न, अनुसन्धान तथा लगन का फल है। यह अत्यन्त शुभ है। उपस्थित ग्रन्थ में परमार्थ के अन्तरी भेद इसी प्रकार प्रकट किये गये हैं जिससे अविश्वास दूर हो, शंका और सन्देहों का तिरोभाव हो तथा प्रीति और प्रतीति का आविर्भाव हो ॥

६. परमार्थ का विषय अति गूढ़, गम्भीर तथा नीरस है। साधा-रणतः मनोरंजक नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, अन्तरी अनुभवों को मानव भाषा और अनुभव सिद्ध दृष्टान्तों द्वारा प्रदर्शित करना बड़ी टेढ़ी खीर है। दृश्य जगत की कोई भी स्थूल-शक्ति ईश्वरी-शक्ति के सदृश नहीं है। अतः लेखनी अनुभव को कैसे वर्णन करे ?

७. आध्यात्मिक शिक्षा की सत्यता न्यायप्रिय-भगवतभक्त और सच्चे जिज्ञासु के हृदय को तुरन्त प्रभावान्वित करती है और उसके सन्देहों को छिन्न भिन्न करके सच्ची प्रीत और प्रतीति का सञ्चार कर देती हैं। केवलमात्र वे लोग ही इसके सिद्धान्तों की शिक्षा में दोष दे सकते हैं जो इस विद्या के यथार्थ को ठीक २ न समझ सके हैं अथवा जो जान बूझकर इसके प्रकाश के तले इसलिए नहीं आना चाहते कि उनकी कोर कसरें प्रकाश की झलक में कहीं चमकने न लगें ॥

८. यद्यपि अर्वाचीन तथा प्राचीन विज्ञान, दर्शन तथा अन्य शास्त्रों के सहारे परमार्थ के गम्भीर सिद्धान्तों को तर्क सहित समझाने का यथा-सम्भव प्रयत्न किया गया है, तथापि सच्चा प्रमाण तो तब ही मिल सकता है जब जिज्ञासु स्वयं अपने आपे को परीक्षण-नलिका में डालने के लिये प्रस्तुत हो। अतः अभ्यास की युक्तियों को भी तुलनात्मक रूप से समझाया गया है, जिससे प्रत्येक मनुष्य किसी बात को मानने से पूर्व प्रत्येक विषय की स्वयं परीक्षा कर सके ॥

९. जिज्ञासु को सच्ची भक्ति और तीव्र लगन के अतिरिक्त अन्य किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं है। परन्तु, यथेष्ट सफलता

प्राप्त करने के लिए पवित्र रहनी-गहनी, अन्तःकरण की निर्मलता, कोमलता, तथा सात्विक जीवन अनिवार्य हैं। परमार्थ की सच्चाई की शक्ति सुपरीक्षित तथा सुसिद्ध है। परन्तु, पर-विज्ञान के शिखर पर पहुँचने के लिये आचार-विचारों को आध्यात्मिक शिक्षा तथा नियमों के आधीन रखते हुए चर्मेन्द्रियों के बेसुरे सुरों को अन्तर्मुख वृत्तियों के प्राकृतिक सुरों में एकसुर और एकलय तथा सुरीला रखना आवश्यक है।

१०. प्रस्तुत ग्रन्थ में नित्य के बोल चाल के शब्दों का ही यथा-सम्भव प्रयोग किया गया है। अतः आशा है कि सामान्य जनता विषय को सहज ही समझ सकेगी। भाषा की सुन्दरता पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। भावों को जैसी-तैसी भाषा में ही प्रकट करने का प्रयत्न किया है। विषय अनुक्रमिक है। अतः आदि से अन्त पर्यन्त अध्ययन द्वारा ही ग्रन्थ के यथार्थ भाव से लाभ उठाना सम्भव है॥

११. विकल जिज्ञासुओं तक शान्ति का सन्देश पहुँचाने, बिलखते हुए भक्तों को प्रेम की माला पहनाकर प्रोत्साहित करने, थकित परमार्थ यात्रियों को विश्राम-मन्दिर का मार्ग बताने और भूले-भटके प्रेमियों को प्रकाश दिखाने के लिये, कृतज्ञता के ये प्रेमपुष्प, एक दीन सेवक की भांति प्यारे प्रीतम के पवित्र चरणों में आशीर्वाद के लिये समर्पण हैं॥

प्रयाग २९. ९. ३१ (लेख समाप्त)

स्वामी सच्चिदानन्द

प्रकरण सूची

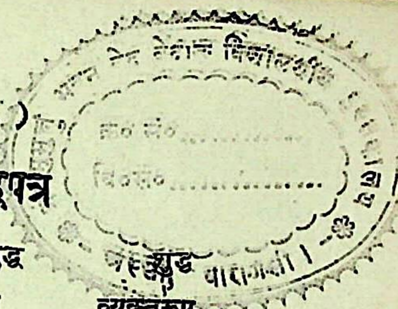
१. रचना में गति
२. व्यवस्था चक्र
३. लय, प्रलय और महाप्रलय
४. रचना चक्र
५. समय-चक्र
६. कर्मचक्र
७. पुनर्जन्म (आवागमन)
८. धर्म और मतमतान्तर
९. परमार्थ और मुक्ति
१०. साधन

नोट—खेद है कि छापे में पृष्ठ ३३ से ४८ गलती से ४९ से ६४ छप गये हैं। पाठकगण कृपया पृष्ठ संख्या सही करलें॥

विषय सूची

रचना में गति

विषय	पृष्ठ
१. चहल-पहल	१-२
२. सार्वभौम सुख की चाह	२-६
३. सुख क्या है ?	६-८
४. प्राणीमात्र का जीवन लक्ष्य	६-१३
५. साधनों की विभिन्नता	१३-१७
६. गति और शक्ति	१७-२१
७. माध्यम और गति	२१-२४
८. दृश्य पदार्थ और सत्वसिद्धि	२४-३०
९. ध्यान से सुखदुख	३०-३३
१०. कामनाओं का वास्तविक रूप	३३-३६
११. स्वर्ग प्राप्ति और सत्वसिद्धि	३६-४१
१२. चैतन्य शक्ति और स्थूल शक्तियां	४२-४३
१३. परमानन्द और सत्वसिद्धि	४३-४५
१४. परमानन्द क्या है ?	४५-५१
१५. गति का उपहार	५१-५२



शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८	१३	व्यक्तरूप	व्यक्तरूप
१९	१०	पदार्थों	पदार्थों
२३	२३	के ही	के ही,
२५	२६	नकली भोगों	नकली भोगों में
२६	५	मनेष्य	मनुष्य
२६	११	बाल्यवस्था	बाल्यावस्था
२६	१५	ऐतिहासिक,	ऐतिहासिक
३१	१७	तक	तब
३२	२	+परमात्मा	+आत्मा
(४९)			(३३)
४९	१८	दृश्य-पदार्थ	दृश्य-पदार्थों
४९	१९	क्या हा	क्या हो
(५०)	...	...	(३४)
(५१)	...	...	(३५)
(५२)	...	....	(३६)
(५३)	...	...	(३७)
(५४)	...	...	(३८)
(५५)	....	...	(३९)
(५६)	...	...	(४०)
५६	९	तवा	तथा
५६	१२	आवागनात्मक	आवागमनात्मक
(५७)	...	....	(४१)

(५८)	...	...	(४२)
(५६)	....	...	(४३)
(६०)	...	...	(४४)
६०	३	प्रेमसरोवर	प्रेमसरोवर को न पाकर
(६१)	...	...	(४५)
(६२)	...	...	(४६)
६२	७	छटपाता	छटपटाता
६२	१०	शेय	शेष
(६३)	...	...	(४७)
६३	७	चञ्जलता	चञ्चलता
,,	,,	चञ्जल हैं	चञ्चल हैं
,,	,,	चञ्जल के	चञ्चल ने
(६४)	...	...	(४८)

परमसन्त परमगुरू परमपूज्य स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती जी महाराज रचित पुस्तकों की सूची

प्रेम पुष्पाञ्जली दो भाग	१।)	भक्ति योग	१)
,, सजिल्द	१॥)	कर्मचक्र तथा पुनर्जन्म	१)
गायत्री रहस्य	।)	धर्म और मतमतान्तर	१॥)
गीतामृत	॥।)	दिनचर्या	॥।)
योग समन्वय	१)	फ़ोटो	५)
रचना में गति	१)	स्वास्थ्य विज्ञान	३॥)

निम्न पुस्तकें छप रही हैं—

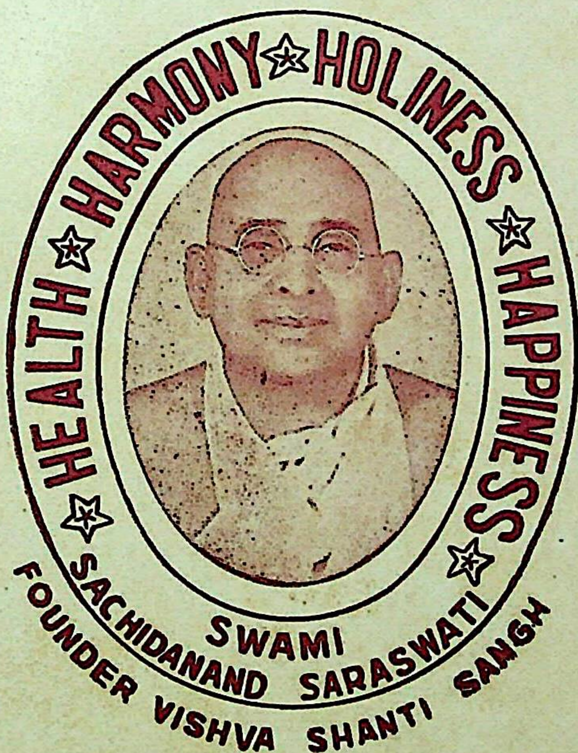
राजयोग	१।)	सांख्य शास्त्र	१॥)
कर्म योग	१।)	वेदान्त शास्त्र	५)
हठयोग	१।)	न्याय शास्त्र	२॥)
आसन	२)	योग दर्शन	२॥)
प्राणायाम	१)	त्यौहार और पर्व	१)
अष्टाङ्ग योग	२)	पञ्चमहायज्ञ	४।)
व्यवस्था चक्र	२)	अघमर्षण रहस्य	।)
भगवद्गीता हिन्दी	३॥)	ओ३म् रहस्य	१)
,, अंग्रेजी	३॥)	जाप की विधि	॥)
ईशोपनिषद हिन्दी	१)	पूजन	॥)
,, अंग्रेजी	१)	ब्रह्मयज्ञ	१)
वर्णव्यवस्था	॥)	देवयज्ञ	१)
शिक्षा में क्रान्ती	१॥)	पितृयज्ञ	।)
आसन चार्ट	२)	अतिथि यज्ञ	।)
चक्र चार्ट	२)	भूत यज्ञ	।)

नोट—इनके अतिरिक्त निरुक्त, ज्योतिष, उपनिषद और चारों वेदों के भाष्य तय्यार हैं। अर्थ संकट के कारण प्रकाशन रुका हुआ है। १००) की पुस्तकें एक साथ लेने से २५°/॰ छूट मिलेगी। २५०) की लेने से डाक ख़र्च भी नहीं लगेगा।

विश्व शान्ति संघ,
१०० हरध्यान सिंह रोड,
करौलबाग, दिल्ली

राजकुमारी बी० ए०
जनरल सेक्रेटरी।




HEALTH ★ HARMONY ★ HOLINESS ★ HAPPINESS ★
SWAMI
SACHIDANAND SARASWATI
FOUNDER VISHVA SHANTI SANGH



प्रेम के फूल

(१) रचना में गति

१. चहल-पहल

व्यग्र-जगत

रचना में एक अनोखी चहल-पहल दिखाई देती है। जिधर देखो उधर ही जीव-जन्तु और भांति २ की शक्तियां अपना २ काम कर रही हैं। लोक लोकान्तर घूम रहे हैं। सूरज निकलता है और डूबता है। धूप के पीछे छांह और छांह के पश्चात् धूप होती है। ऋतुयें अपने २ सुन्दर दृश्य बारी २ से दिखाती हुई चली जाती हैं। हवा अपना मधुर राग गाती हुई चल रही है। नदियां पर्वतों को गुञ्जाती हुई, मैदानों में नाचती-कूदती समुद्र की ओर छलांगें मार रही हैं। मनुष्य दौड़-धूप में व्यस्त हैं। चींटी अपनी खैंचतान में मग्न है। दीमक अपने दुर्ग तथा महल निर्माण में लग्न है। मकड़ी ताना बाना पूर रही है। चूहे सुरंगें बना रहे हैं। चौपाये चर रहे हैं। चिड़ियां चह-चहा रही हैं। साराँश यह है कि चारों ओर चहल-पहल, दौड़-धूप और काम काज के ही दृश्य दिखाई देते हैं॥

पुरुषार्थ

इस समस्त प्रदर्शन को 'पुरुषार्थ' कहते हैं। पुरुषार्थ पुरुष के लिये किया जाता है। पुरुषार्थ में 'गति' का समन्वय है। 'गम् गत्यर्थे बोध्यर्थे प्राप्त्यर्थे वा'

धातु से 'गति' शब्द के तीन अर्थ होते हैं—गमन, ज्ञान और प्राप्ति। 'गमन' आत्मा का स्वाभाविक धर्म है। गमन एक स्थान से दूसरे स्थान में हुआ करता है। परमात्मा सर्वव्यापक है, अतः गति नहीं कर सकता। दूसरा स्थान ही कहां है जहां वह जा सके? प्रकृति जड़ है अतः वह भी निष्क्रिय है। स्पष्ट है कि समस्त गति आत्मा के संयोग से हो रही है। जीवस्वरूपी आत्मा को 'पुरुष' कहते हैं। सिद्ध है कि पुरुष के निमित्त से ही जगत की सारी दृश्य-गति पुरुष के अर्थ ही हो रही है।

गति तीन प्रकार की होती है—

१. शारीरिक, २ मानसिक और ३ आत्मिक। ऐसे ही ज्ञान भी तीन प्रकार का है—१ प्रातिभासिक, २ व्यवहारिक और ३ परमार्थिक। प्रातिभासिक ज्ञान इन्द्रियों तथा संस्कारों द्वारा होता है। व्यवहारिक ज्ञान काल्पनिक जगत के वन्धनों से होता है। परमार्थी ज्ञान आत्मा और परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से होता है। इसी को परम्पुरुषार्थ अर्थात् मुक्ति कहते हैं। प्राप्ति भी तीन प्रकार की होती है—१ जड़ दृश्य पदार्थों की, २ परोक्ष स्वर्ग की और ३ परमात्मभाव की। सारा संसार इन्हीं गतियों में संलग्न है। प्रश्न होता है कि यह सारी चहल-पहल मुख्यतः क्यों हो रही है?

२ सार्वभौम सुख की चाह

पुरुषार्थ में अर्थ

गम्भीरता-पूर्वक विचार करने से ज्ञात होता है कि विना कारण कोई कार्य्य नहीं होता। सारे जीव अपने २ स्वार्थ में मस्त हैं और उसको प्राप्त करने के लिये सब कुछ करने के लिये तत्पर हैं। अपनी न्यूनता, क्षीणता और हीनता पूरी करने के लिये निम्न

लोक अपने से उच्च और अधिक चैतन्य लोकों की परिक्रमा कर रहे हैं। मान बढाई पाने के लिये निम्न कोटि के मनुष्य अपने अधिकारियों के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। गाय घास के लिये हटकेलियाँ करतीं है, कुत्ता रोटी के टुकड़े के लिये दिन-रात पहरा देता है। घोड़ा दाने के लिये हिनहिनाकर अपने स्वामी की प्रसन्नता प्राप्त करने की चेष्टा करता है। घी-दूध के लिये मनुष्य गाय की टहल करता है, सवारी के लिये घोड़े, हाथी तथा यानों की सेवा करता है और अन्न के लिये खेत बोता है। सारांश—प्रत्येक जीव स्वास्थ्य और उन्नति, स्त्री और पुत्र, भूमि तथा सम्पत्ति, धन और ऐश्वर्य, यश तथा कीर्ति और मान तथा अधिकारादि के ही लाभ करने में व्यग्र है। अर्थात् सारा संसार अपने २ 'अर्थ' में बंधा हुआ सृष्टिमञ्च पर सदा ही नृत्य करता रहता है। पुरुषार्थ, स्वार्थ और परमार्थ तीनों में 'अर्थ' का समावेश है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को पुरुषार्थ कहते हैं। धर्म से मोक्ष की सिद्धि होती है और अर्थ से कामनाओं की। प्रश्न होता है कि वह कौन सी कामना है जिसकी सिद्धि के लिये संसार 'अर्थ'-सञ्चय करने में इतना उद्विग्न है?

अर्थ से सुख कामना

रचना में अनन्त जीवों के असंख्य मन और असंख्य वृत्तियाँ तथा अनन्त मतभेद हैं। अनादि काल से अध्यात्म, मनोविज्ञान, तथा आचार सम्वन्धी अनेकानेक ग्रन्थ इस विषय का विवेचन करते आये हैं। यद्यपि साधन के सम्बन्ध में संसार में अनन्त कोटि मतभेद हैं परन्तु सबका अन्तिम लक्ष्य एक ही है। यह बात निर्विवाद है कि सभी देशों में, सभी युगों में, आस्तिक हो या नास्तिक, शिक्षित हो या अशिक्षित, प्रत्येक मनुष्य की 'मनसा-

वाचाकर्मणा' सारी चेष्टायें एक ही कामना से होती हैं। और वह कामना यह है कि वह सब स्थानों में, सब समयों में, प्रत्येक अवस्था में सब प्रकार से सुखी रहे। मनुष्य ही नहीं प्राणीमात्र का ध्येय सुख है। सारा संसार दुःख से बचने और सुख के लाभ करने में व्यस्त है। यदि किसी भी जीव से पूंछा जाय कि तुम स्वास्थ्य, वल, स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति; विद्या, कीर्ति, यश, मान; अधिकार, उन्नति आदि क्यों चाहते हो तो सब के सब एक स्वर से यही कहेंगे कि इन वस्तुओं की प्राप्ति से अमुक उपभोग लाभ होगा और उससे सुख होगा। दुःख और अशान्ति को जीव अपनी अवनति समझता है और सुख-शान्ति को उन्नति। उन्नति अर्थात् सुख की कामना जीव का स्वाभाविक धर्म ही नहीं है वरन् जीवन तथा जागृति का प्रधान चिह्न है। संसार की सारी चहल-पहल इसी पर निर्भर है। यदि सुख की कामना न हो तो समस्त प्रयत्न और चेष्टायें शिथिल हो जावें और रचना मृतवत् शून्य दिखाई देने लगे। संसार में मनुष्य तथा प्राणीमात्र ही नहीं वरन् देह के अंग-प्रत्यंग भी किसी अनिष्ट वस्तु के निकट आने पर उससे विद्रोह करते हैं। बुरी वस्तु खा लेने पर शरीर की समस्त शक्तियें उस अनिष्ट वस्तु को शीघ्रातिशीघ्र बहिष्कार करने के प्रयत्न करने लगती हैं और जब तक उसको शरीर से बाहर नहीं निकाल देतीं, विश्राम नहीं लेतीं॥



कामनायें न्यूनता की द्योतक हैं। कामनायें न्यूनता की पूर्ति के लिये ही कि जाती हैं। सुख की कामना सुख की न्यूनता को प्रदर्शित करती हैं। सुख की न्यूनता दुःख की वृद्धि का संकेत करती हैं। दुःख निवृत्ति के अनुपात में सुखवृद्धि होती है। सुख की न्यूनता के अनुपात में

दुःख की अधिकता होती है। दुःख की एकान्तिक निवृत्ति में पूर्ण सुख ओत-प्रोत हैं॥

ध्येय ?

जब तक यह ज्ञात न हो कि मनुष्य क्या चाहता है, उस समय तक प्रयत्न में अभीष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। उन्नति की कामना और प्रयत्न होते हुए भी दुखियाओं के करुणक्रन्दन से संसार कम्पायमान है। चारों ओर हाहाकार सी सुनाई देती है। कठिनाइयां पहाड़ की भांति सफलता के मार्ग को रोके खड़ी हैं। कारण यह है कि प्राणीमात्र सच्चे दिल से उन्नति चाहता हुवा भी यह नहीं जानता कि उसका वास्तविक लक्ष्य क्या है और प्रस्तुत साधनों से वह किस ओर जा रहा है। ध्येय निश्चित किये बिना यात्रा करना हास्यप्रद है। निर्ध्येय-यात्री सदा ही भटकता रहता है। जो उत्तर की ओर जाना चाहता है उसको दक्षिणाभिमुख जाने से ध्येय की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। ऐसा मनुष्य उन्नति की इच्छा रखता हुआ भी और समस्त प्रयत्न करता हुआ भी उन्हीं प्रयत्नों से उन्नति की अपेक्षा अवनति की ओर अग्रसर होता हुआ लक्ष्य से दूर होता चला जाता है। और अनेकानेक कठिनाइयों तथा भ्रमों में भ्रमता हुआ नित्य नये दुःख भोगता है। बुद्धिमान यात्री, यात्रा करने से पूर्व अपना ध्येय निर्धारित करता है॥

अटपट-साधन

तत्पश्चात् उस ओर जाने वाली गाड़ियों और मार्गों का विचार करता है। और, सबसे छोटे, सहज और सुलभ मार्ग का आश्रय लेता है। संसार के बढ़ते हुवे दुःख और क्लेशों का एकमात्र कारण यही है कि प्राणीमात्र अपने ध्येय को जानने से

पूर्व यात्रा ही प्रारम्भ नहीं कर चुके हैं वरन् ध्येय से बहुत दूर पहुंच भी गये हैं। मार्ग-भ्रमित यात्री की भांति मार्ग में चलते हुवे अन्य प्रत्येक यात्री से मार्ग की अच्छाई बुराई पूंछने से क्या लाभ हो सकता है, जब दोनों में से एक को भी यथार्थ रूप से यह ज्ञात नहीं है कि उसको जाना कहाँ है ? मार्ग का पथिक दूसरे यात्री के आन्तरिक लक्ष्य से अनभिज्ञ होने के कारण, अपने विचारानुसार जो श्रेय प्रतीत होता है वही मार्ग बता सकता है। इस प्रकार दोनों यात्री भ्रम में पड़े हुवे नित्य नये दुःखों का उपभोग करते रहते हैं। जब तक किसी अन्तरी-भेद जानने वाले दयालु पथ-प्रदर्शक से भेंट नहीं होती तब तक कार्य-सिद्धि असम्भव है ॥

३. सुख क्या है ?

दुःख के प्रकार-भेद

सुख का यथार्थज्ञान प्राप्त करने के लिये, यह जान लेना परमावश्यक है कि दुःख क्या है और कैसे होता है। संसार में जितने दुःख होते हैं उनको तीन भेदों में विभक्त किया जा सकता है :

(१) **आध्यात्मिक दुःख**—आत्मा का शरीर के साथ संयोग होने के कारण जो देह के भीतर होते हैं; जैसे—अविद्या, राग, द्वेष, मूर्खता, ईर्षा, क्लेश, लोभ, मोह, क्रोध, रोग, पीड़ा, मृत्यु आदि।

(२) **आधिभौतिक दुःख**—जो अन्य जीवों तथा भूतों के संसर्ग के कारण होते हैं; जैसे शत्रु, व्याघ्र, सर्पादि द्वारा।

(३) **आधिदैविक दुःख**—जो दैविक शक्तियों के कारण होते हैं जैसे, अतिवृष्टि, अति-उष्ण, अति-शीत, वज्रपात आदि ॥

ध्यान की धार

गूढ़-दृष्टि से देखने से ज्ञात होता है कि जितने भी सुख या दुःख इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होते हैं वे सब भोगकाल में चित्त-वृत्तियों की धार (ध्यान) के उचित इन्द्रिय के द्वार पर एकाग्र हो जाने पर ही अनुभव होते हैं। यदि चित्त की धार किसी केन्द्र पर उपभोग के समय न आवे तो उस इन्द्री को अपने भोग का किञ्चित मात्र भी रस प्राप्त नहीं होता। ध्यानावस्थित अवस्था में अपने लक्ष्य के अतिरिक्त चारों ओर चाहे जो कुछ हुआ करे परन्तु, मनुष्य को उसका लेशमात्र ज्ञान नहीं हो पाता। अचेत करने वाली औषधों के प्रयोग तथा त्राटक क्रिया द्वारा अचेत हो जाने पर, चाहे देह को छिन्नभिन्न भी कर डालो परन्तु, मनुष्य को इस विषय की सूचना तक भी नहीं होती। स्वप्न, सुषुप्ति और समाधि की अवस्था में चित्त की एकाग्रता अन्यत्र होने के कारण, शरीर तथा इन्द्रियों द्वारा किसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त नहीं होता, वरन् अन्तष्करण स्वतः ही बिना इन्द्रियों की सहायता के संस्कार क्षेत्र के भोगों का रसास्वादान करता रहता है॥

सुख दुःख की परिभाषा

सुख दुःख बाहरी पदार्थों में नहीं हैं। मनुष्य पदार्थ-विशेषों का संग्रह, किसी विशिष्ट सुखभोग के हेतु ही करता है। वस्तु को वस्तु के हेतु कोई नहीं चाहता। वरन् पदार्थ सञ्चय करने का समस्त श्रम और प्रयत्न इस भ्रमपूर्ण सिद्धान्त पर आधारित है कि मनुष्य इन पदार्थों को अभीष्ट सुख प्राप्ति का साधन जानता और मानता है। चित्त की एकाग्रता के अनुपात में इन्द्रियज्ञान की न्यूनताधिकता होती है। अतः सुखदुःख का कारण जीव के अन्तःस्थित है। जब ध्यान की धार का प्रवाह तन या मन के केन्द्र पर एकाग्रित होता है उस

समय इष्टवस्तु की प्राप्ति से जीव को जो अनुभव होता है उसी को जीव 'सुख' कहते हैं। दूसरे शब्दों में, ध्यान की स्थिति का अनुभव ही 'सुख' है।

इसी प्रकार, ध्यान की धार के तम या मन के केन्द्र से बलपूर्वक विक्षिप्त होने के अनुभव को 'दुःख' कहते हैं, अर्थात् ध्यान की विक्षिप्ति का अनुभव ही 'दुःख' है।

दुःख निवृत्ति के भेद

काल भेद से दुःख तीन प्रकार का है : १ वर्तमान, २ भूत और ३ भविष्य (आगामी)। भूत-दुःख तो नष्ट प्रायः ही होते हैं। वर्तमान दुःख कुछ काल के उपरान्त व्यतीत ही होंगे। परन्तु, अनागत दुःख से निवृत्त रहने के लिये ही बुद्धिमान लोग पुरुषार्थ किया करते हैं। "हेयदुखमनागतम्"—पतञ्जलि महाराज आगामी दुख को हेय (त्यागने योग्य) बताते हैं। दुःख से दूर रहने के लिये प्रयत्न की आवश्यकता है। यही पुरुषार्थ है। दुःख निवृत्ति के लिये दुःख के कारण का नाश करना आवश्यक है। 'कारणा भावात् कार्य्याभावः'—वैशेषिक-'न रहे बांस न बजे बांसुरी'। कारण का नाश करने के लिये साधन की आवश्यकता होती है। अपनी जान में प्रत्येक प्राणी वही यत्न करता है, जिससे दुःख से निवृत्त होकर सुख लाभ करे। परन्तु, अपनी २ बुद्धि और योग्यता के अनुकूल साधनों में अन्तर है। साधन के अनुकूल फलों में भी अन्तर हो जाता है। एक व्यक्ति का सामर्थ और प्रयत्न उसको केवलमात्र क्षणिक सुख और दूसरे को मध्यम सुख तक ले जाता है। परन्तु दूरदर्शी ऐसे साधनों का प्रयोग करते हैं जिनके द्वारा वे दुखों से एकान्तिक निवृत्ति पाकर अक्षय-सुख लाभ करते हैं॥

४. प्राणीमात्र का जीवन-लक्ष्य

जीवका लक्ष्य क्या है ?

साधनों की जाँच करने से पूर्व यह बात भली भांति निश्चय कर लेनी चाहिये कि जीव का वास्तविक तथा आन्तरिक लक्ष्य क्या है ?

सुख की कामना प्रत्येक प्राणी के हृदय में चिनगारी के रूप में उपस्थित है। आशारूपी वायु के प्रवाह से कामनाओं की अग्नि प्रज्वलित हो जाती है और उसकी लपटों के ताप से जीव संतप्त और व्याकुल हो जाता है। ताप के कारण सुख की प्यास इतनी तीव्र हो जाती है कि मृग। की भांति धूप से चमकती हुई बालू को जलाशय समझकर, जीव सांसारिक चमकीली वस्तुओं को आनन्द-सरोवर जान और मान कर चारों ओर भ्रमता फिरता है। अतः भ्रमरूपी इस अवि-वेक के अन्धकार को ज्ञान के प्रकाश द्वारा छिन्न-भिन्न करके असली और नक़ली सुख में भेद करना आवश्यक है।

सत्

अपने हृदय ही से पूछो "तू कभी तो धन की ओर दौड़ता है, कभी कामिनी की ओर तो कभी विद्या की ओर। वास्तव में तू चाहता क्या है ? धनादि का तू क्या करेगा ?" उत्तर यही मिलेगा—'अमुक अर्थ की प्राप्ति में मुझको अमुक भोग और उस भोग द्वारा सुख मिलेगा।' प्रश्न—सुख क्यों चाहते हो? उत्तर—सुख तथा आनन्द की कामना स्वा-भाविक है। स्वाभाविक धर्म नित्य होते हैं। नैमित्तिक धर्मों का तिरोभाव-आविर्भाव सम्भव है। यदि कहा जावे कि भाई, कुबेर की धन सम्पत्ति तुमको देते हैं परन्तु परसों तुम्हारे लिये यम महाराज का निमन्त्रण है। प्रत्येक जीव इस प्रश्न का एक ही उत्तर देगा। 'मुझे ऐसा सुख नहीं चाहिये। ऐसा सोना जारिये

जासे टूटे कान। सुख कामना स्वाभाविक है, हम तो नित्य सुख चाहते हैं।' रोगशय्या पर पड़ा हुआ मृतासन्न रोगी भी अपने वैद्य को सम्मुख देखकर चिल्ला उठता है—'डाक्टर साहब! यह समस्त धन सम्पत्ति आप ले लीजिये, किसी भांति मेरी जान बचाइये।' महाभारत में एक कथा आती है—करालदावानल में फँसी हुई एक चिड़िया अपने नन्हें २ सात बच्चों को जो अभी उड़ना भी नहीं जानते थे, रक्षा के लिये एकत्र करती है और वृक्ष की एक डाल से दूसरी डालपर, दूसरी से तीसरी पर, बच्चों को हृदय से लगाये, ऊपर ही ऊपर उड़ती जाती है। अन्त में वृक्ष की सबसे ऊंची शाखा पर बैठकर जान बचाने का प्रयत्न करती है। निदान, ज्वाला के प्रचण्ड वेग से विवश होकर 'सर्वश जाता देखकर आधा दीजे बाँट'— वाली कहावत चरितार्थ करती है। एक के नीचे एक सब बच्चों को पैर तले दबाती हुई सबके ऊपर आप बैठ जाती है। इस प्रकार आत्म रक्षा के लिये एक २ करके सब बच्चों की आहुति देकर स्वप्राणों की रक्षा करने की चेष्टा करती है। जिस वस्तु को जीव सबसे अधिक चाहता है उस वस्तु की रक्षा के लिये अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिये उद्यत रहता है। स्पष्ट है कि प्राणीमात्र की सुख की कामना के अन्तर्गत जीने की इच्छा सर्वोच्च तथा सर्व प्रधान है। अपना अस्तित्व स्थापित रखने के लिये विश्वव्यापी महा-संग्राम हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति शाश्वत जीवन चाहता है। 'जीव' का स्वाभाविक धर्म-नित्य-जीवन है। 'जीव' वही है जो जीवे। इस नित्य जीवन को संस्कृत-भाषा में 'सत्' कहते हैं॥

चित्

यह बात भी निर्विवाद है कि कोई भी जीव 'मूर्ख रहना' नहीं चाहता। मूर्ख जीव अपने स्वर्गमयी जीवन को नरक बना लेता है। ज्ञानी नरक को स्वर्ग में परिणित

कर देता है। स्पष्ट है कि प्रत्येक जीव शाश्वत जीवन के अंग-संग सर्वज्ञान प्राप्त करना चाहता है। जीव की इस चेष्टा को संस्कृत में **'चित्'** कहते हैं॥

आनन्द

इसके अतिरिक्त, जीवमात्र की स्वाभाविक कामना यही है कि वह अपने चारों ओर अनन्तकाल तक ऐसी परिस्थिति नित्य स्थापित रखे जिसमें वह अपना शाश्वत जीवन अत्यन्त एकान्तिक सुख और पूर्ण शान्ति से व्यतीत कर सके। प्राणीमात्र ही नहीं वरन् शरीर के अंग-प्रत्यंग भी अनिष्ट वस्तु के संसर्ग से दूर भागते हैं। संसार दुख से व्याकुल है। दुखियों की वेदनात्मक आहों से विश्व-देह का अणु अणु कांप रहा है। मनुष्य ऐसे मार्ग पर चलना चाहता है जिस पर जीवन नौका स्वतंत्रता से गति करती रहे। वह ऐसा सुख नहीं चाहता जो पानी के बुदबुदे की भांति क्षणभंगुर हो। वह ऐसा सुख चाहता है जो चिरस्थायी तथा एकसम और नित्य हो। परिवर्तन शील दुःख सुख की कामना नहीं है। वह अटूट अक्षय सुख की खोज में है। सुख का लगा हुआ तार कभी न टूटे। इसी अभिलाषा से प्रेरित होकर एक विद्यार्थी अपने जीवन का सर्वोत्कृष्ट, बहुमूल्य तथा अधिक समय भिन्न २ शास्त्र और विज्ञान के सूक्ष्म तत्वों को जानने में बिता देता है। वैज्ञानिक आविष्कार करता है और अनुसंधान के व्यापार में संलग्न बिजली, प्रकाश, आकर्षण, ताप, वायु, जलादि के अणु २ को गिनता है, लहरों को नापता है और तोलता है। परमाणुओं के अंश-प्रत्यंश की परीक्षा करता है। अथाहों की थाह लेता है। और विश्व के हृदय की धड़कन तथा नाड़ी की खटखट की जांच करता है। अपने ध्येय के सम्मुख वह किसी दुख को दुख नहीं

समझता। इतना पुरुषार्थ, इतना परिश्रम और इतना कष्ट मनुष्य केवल इसलिये सहन नहीं करता है कि वह 'क्षणभंगुर तुरत-सुख' को लाभ करले। वरन् जीव 'नित्य-अक्षय-सुख' चाहता है। दुःख के आत्यान्तिक अभाव में सुख की आत्यान्तिक अवस्था ओत-प्रोत है। इसी अवस्था को संस्कृत में 'आनन्द' कहते हैं।

सच्चिदानन्द

स्पष्ट है कि छोटे-बड़े, बूढ़े-जवान, स्त्री-पुरुष, शिक्षित-अशिक्षित, आस्तिक-नास्तिक सब ही जीवों का जाने तथा अनजाने प्रतिक्षण नित्य एक ही लक्ष्य है। सभी जीव 'सत्+चित्+आनन्द' की कामना रखते हैं और उसी एक की प्राप्ति का प्रयत्न गुप्त या प्रकटरूप से नित्य ही करते रहते हैं। ये तीन अन्तरङ्ग स्वाभाविक चेष्टायें उस परम्पुरुष के विशेषण हैं जिसको सारे धर्म परमात्मा के नाम से पुकारते हैं। इसी को परमानन्दगति कहते हैं। प्राणीमात्र की समस्त चेष्टायें इन तीन स्थायी प्रेरणाओं का ही परिणाम है। सुख की कामना का रहस्य इन्हीं तीन स्वाभाविक प्रेरणाओं में गुप्त है, अर्थात्,

१. नित्य जीवन.........सत्

२. सर्वज्ञान............चित्

और ३. अतीत सुख.........आनन्द।

अनेक विभिन्नतायें होते हुए भी जीवमात्र का एक ही लक्ष्य है, "सर्व परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखं"—मनु०। 'पराधीन स्वप्नेहु सुख नाहीं'। सच्चिदानन्द में परतन्त्रता नहीं रहती। स्वर्ग भी पराधीनता है। मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी पिंजरा खुलने पर स्वतन्त्रता के लिये निजघर की ओर ही भागते हैं। स्वतन्त्रता

जीव का स्वाभाविक धर्म है और यह उस समय तक प्राप्त नहीं होती जब तक जीव समस्त बन्धनों से मुक्त नहीं हो जाता। मुक्ति तभी सम्भव है जब जीव 'सच्चिदानन्द' प्रभु को प्राप्त करले। सच्चिदानन्द की प्राप्ति में ईश्वरत्व तथा पूर्ण स्वतन्त्रता ओत-प्रोत हैं। 'सच्चिदानन्द' के अन्तर्गत सब कुछ प्राप्त हो जाता है और उसके परे कोई वस्तु प्राप्त करने योग्य शेष नहीं रहती ॥

५. साधनों की विभिन्नता

गति क्या है ?

अब साधन की खोज करना आवश्यक है। जीव की गति केवल तीन ही स्थानों में हो सकती है। और, वह तीन ही वस्तुओं को प्राप्त कर सकता है :

१. दृश्य जगत् और उसके पदार्थ }=प्रकृति
२. काल्पनिक जगत् और स्वर्ग के भोग }=प्रकृति

और ३. परमानन्द-गति..............................=परमात्मा ॥

सुख की खोज में जितना ही जीव चमकीले दृश्य-पदार्थों के निकट होता है उतना ही वे मृगतृष्णा की भांति जीव से दूर होते जाते हैं। सुख चंचल पक्षी है। जीव व्याध है। आखेटक को निकट देखकर मनोहर पक्षी एक वस्तु से उड़कर दूसरी वस्तु पर जा बैठता है और व्याध के पंजे से बराबर दूर रहता है। बेचारा, निर्बल जीव सांसारिक सुख की खोज में व्याकुल भ्रमता फिरता है परन्तु उसका कोई वश नहीं चलता। दीन करे भी तो क्या ? कामाग्नि का प्रचण्ड-ताप उसके पीछे २ साथ ही साथ लगा फिरता है। पीछा नहीं छोड़ता। जीव वापिस भी नहीं हो सकता। मोहिनी चिड़िया की कोमल हठखेलियाँ, मृदुता तथा

माधुर्य्य जीव को अपने वश में कर चुकी है। किसी प्रकार शान्ति नहीं है॥

दो मार्ग

विषादग्रस्त व्याकुल जीव दो मार्गों के संगम पर खड़ा है—'वहिर्मुखी (प्रवृत्ती) और अन्तर्मुखी (निवृत्ति)। इधर खाई, उधर खन्दक। उसको अन्धकार ही अन्धकार चारों ओर दिखाई देता है। वह मार्ग नहीं पाता। वह अपना कर्त्तव्य निर्धारित करने में असमर्थ है।

रात्री के घोरतम अन्धकार में से ही सूर्य्य की किरणें जागृति का सन्देश दिया करती हैं। आत्यान्तिक निराशाएं ही भगवान के चरणों की ओर आह्वान करती हैं। प्रभु की रक्षा का हाथ आपत्तियों में ही झलकता है। जिस स्थान पर आपत्ति जीव को घेरती है उस स्थान से कोसों दूर आगे लेजाकर छोड़ती है। आपत्तियाँ बधाई की पात्र हैं।

"ए वला आके तू मेरे लिये बरकत होगी।
तेरे परदे में छिपी माबूब की रहमत होगी॥"

प्रवृत्तिमार्ग

संसार के भोग विलास जीव को अपनी ओर आकर्षित करते हैं—"आओ, जीते जी खाओ-पियो और मौज करो। अब तो आराम से रहो, कल की किसको पता, क्या होगा? उपस्थित भोग विलासों को छोड़कर अनुपस्थित आनन्द की आशा में वैराग की जीवनी का कष्ट वृथा ही क्यों उठाते हो? भविष्य की आशा में परोसी हुई थाली को क्यों ठुकराते हो? दीनता के भावों ने मनुष्य को दुर्बल बना दिया है और उसकी निजी उन्नति को

रोक दिया है। अपनी शक्ति पर भरोसा रखने वाली जातियां स्वस्थ, धनवान और सुखी हैं।" इन जातियों की दिखावटी चमक-दमक तथा सुख की जीवनी तथा जीवों की जन्मजन्मान्तर द्वारा प्राप्त निजी प्रवृति प्राणिमात्र को प्रवृत्तिमार्ग की ओर आकर्षित करती है॥

निवृत्तिमार्ग

दूसरी ओर, निवृत्तिमार्ग का निमन्त्रण है। "ए जीव, तू निर्बल और अल्पज्ञ है। अविवेक के कारण ही तू दुःख और क्लेशों के बन्धन में बंधा हुआ है। अहंकार को छोड़, दीनता धारण कर। जगत की झंझटों से हटकर मालिक का ध्यान कर। अनमोल जीवन को मिट्टी पत्थर के बदले मत वेच। तेरे अन्दर हीरे की कान है। जीवन अमर है। उत्पत्ति तथा मृत्यु से जीवन का प्रारम्भ तथा अन्त नहीं होता। जीव सनातन सत्ता है। चोला छोड़ने के पश्चात् भी जीवन है। थोड़े दिन का कष्ट उठाकर नित्यानन्द की चिन्ता कर। संसार के बुभुक्षितों को संसार के पीछे दौड़ने दे। ग़रीबी और सन्तोष का सुख अमीरी में नहीं है। उनका मार्ग बाहर है, तेरा मार्ग अन्दर है। तू मालिक के महलों में पहुंचेगा और वे बाहर फिरेंगे।"

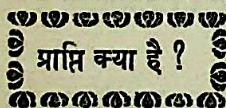
हृदय-संग्राम

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसःश्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥"

अर्थ—ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छः को भाग्य कहते हैं॥

जीव बेचारे की जान बड़ी खैंचा तानी में है। संसार जिन पदार्थों को सार वस्तु मानता है, निवृत्ति मार्ग वाले उन्हें असार

और अवस्तु बताते हैं। निवृत्तिमार्ग वाले जिन पदार्थों को सार वस्तु मानते हैं, प्रवृत्तिमार्ग उनको असार और अवस्तु बताता है। संसार अपनी ओर बुला रहा है। दूसरी ओर, हृदय में संग्राम छिड़ा हुआ है। भूक और दासता के मार्ग पर चल कर भिक्षावृत्ति धारण करे अथवा भोगविलास और वैभव का जीवन व्यतीत करे ? यह धर्म युद्ध प्रत्येक जीव के अन्तर के अन्तर में निरंतर हो रहा है। यही दैवासुर-संग्राम है। किस पक्षमें सम्मिलित हों। दोनों विपक्षी अपने-अपने मत का समर्थन और विपक्ष मत का खण्डन करते हैं। समझ में कुछ नहीं आता। यही असमञ्जस, यही सन्देहात्मक बुद्धि, यही अविवेक जीव के बन्धन का हेतु है और सृष्टि की स्थिति का कारण है। हृदय में, भोग-विलास और सन्यास के बीच तुमुल युद्ध होने लगता है। कभी, चित्त की निर्मलता विषयवासना और कामनाओं को शान्त कर देती है। कभी, जीवन-संग्राम के प्रति वैराग्य, युद्धक्षेत्र से भागने के लिये प्रोत्साहित करता है। जीवन संग्राम से बचने का कोई उपाय नहीं दीखता। दोषों के कारण युद्ध में रूचि नहीं है। आवश्यकता है कि सत्य-असत्य, कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय किया जावे ॥


प्राप्ति क्या है ?

इस स्थान पर तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं:-

१. क्या दृश्य पदार्थों द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है ?

२. क्या स्वर्ग प्राप्ति से लक्ष्य सिद्ध हो सकता है ?

३. क्या लक्ष्य प्राप्ति का कोई अन्य भी साधन हो सकता है ?

गम्भीरतापूर्वक विचार करने से ज्ञात होता है कि जो सुख देहधारी संसार में प्राप्त करते हैं, वे सब इन्द्रियों के भोग हैं। अनमोल रत्न, हीरे-मोती, धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र, भोगों की

सर्वोत्तम सामग्रियां, स्वादिष्ट मीठे और नमकीन भोजन, कोमल सुगन्धित वस्त्र, मनोहर नाच और मधुर संगीत, रंग-महल आदि, जिनकी प्राप्ति के लिये मनुष्य दिन-रात मतवाले की भांति प्रयत्नशील है, सब के सब इन्द्रिय भोग ही हैं। बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट, राजे-महाराजे और सेठ-साहूकार, जिनके पास इन वस्तुओं की कोई कमी नहीं है, इन भोगों को भोगते हुवे भी सुखी नहीं हैं। किसी वस्तु की अभिलाषा उनको भी व्याकुल किये हुवे है। बड़े-बड़े सम्राट किसी वस्तु के अभाव के कारण निरन्तर खोज में संलग्न हैं। वह कौनसी कल्याणमयी वस्तु है जिसकी प्राप्ति द्वारा जीव 'निर्मल-अक्षय-सुख' भोगने की आशा बांधे हुवे है और जिसकी प्राप्ति इन्द्रिय-भोगों द्वारा असम्भव है ? वह कैसा सुख है जिसका अभाव जीव को सुख से नहीं बैठने देता और जो प्राणिमात्र का परम्-ध्येय है ?

६. गति और शक्ति

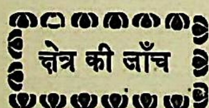
शक्ति

इस विषय पर और विचार करने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि 'गति क्या है' ? प्रकाश, ताप, शब्द, भ्रमण, कम्प, लचक, आकर्षण, विकर्षण, विद्युत, प्रवाह, चहल-पहल, दौड़-धूप, स्फूर्ति, उन्नति और कला-कौशलादि सबके सब गति-शक्ति के ही अनेक नाम और भिन्न भिन्न रूप हैं॥

प्रत्येक शक्ति के दो स्तर होते हैं :

१. कारणस्तर (मूल-भण्डार) और २. क्रियास्तर (=आधार)। जिस स्थान पर शक्ति केन्द्रित तथा समाधिस्थ रहती है उस स्थान को शक्ति का **भण्डार** कहते हैं। भण्डार से

चलकर जिस स्तर पर शक्ति प्रकट होती है उसको शक्ति का **आधार** कहते हैं। अतः शक्ति के दो रूप भी होते हैं—**गुप्त** और **प्रकट,** भण्डार में गुप्त तथा आधार में प्रकट। यह सार्वभौम नियम है कि जब तक भण्डार में क्षोभ न हो तब तक कोई शक्ति निम्नस्तर पर प्रकट नहीं हो सकती। समस्त जीवों की संयुक्त 'सुख की कामना' से शक्ति के भण्डार में क्षोभ पैदा हो जाती है। और, यही तरंग धार-रूप में दृश्य-जगत में व्यक्त होती है। शक्ति एक नियत मार्ग पर यात्रा करती है। ध्येय पर पहुँचकर शक्ति की **'क्रिया'** समाप्त हो जाती है और उसकी **'प्रतिक्रिया'** प्रारम्भ होती है। इस मार्ग को **'शक्ति-मार्ग'** कहते हैं। कामना से क्षोभ और क्षोभ से धार प्रादुर्भूत होती है। बिना धार के शक्ति आधार-घाट पर गुप्त रहती है। धार अपना **'क्रियाक्षेत्र'** स्थापित करती है और इसी क्षेत्र में शक्ति व्यक्तरूप से अपने कार्यसहित प्रकट होती है। क्रियावती शक्तियों को **'चल'** और स्थिर को **'अचल'** कहते हैं॥



क्रियाक्षेत्र सुख-कामना की गति की हलचल का परिणाम है। क्रियाक्षेत्र की जाँच द्वारा गति के भण्डार तक पहुंचना सम्भव है। धार की जाँच से ध्येय (सुख कामना) की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि कारण के गुण कार्य्य में झलकते हैं और कार्य्य के गुण कारण को प्रदर्शित करते हैं। 'गति' के क्रियाक्षेत्र पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इस चहल-पहल ने अनेक विद्याओं तथा कला-कौशल के कार्यों की व्यवस्था की, प्रकृति के गुप्त-भेद और नियमों को प्रकट किया, तथा आकाश, पृथिवी, सूर्य्य, चांद और तारा-

गणादि के सम्बन्ध में अन्वेषणायें कीं। सारांश यह है कि सारी विद्याएं, ज्ञान और विज्ञान और उनके द्वारा प्राप्त सुख, गति के क्रियाक्षेत्र को प्रदर्शित करती हैं। सब जानते हैं कि समस्त ज्ञान और विज्ञान को रचना की सर्वोत्तम-योनि अर्थात् मनुष्य ने प्रकट किया है। आत्मा ही की गति होती है। समस्त दृश्य जगत इस गति का ही परिणाम है। जिन वस्तुओं का पहले वर्णन किया गया है वे सब प्रकृति की देहें रखते हैं। प्राकृतिक वस्तुओं का भोग और ज्ञान चर्मेन्द्रियों द्वारा होता है। इन्द्रियों के गोलक स्थूल-शरीर में हैं। स्पष्ट है कि स्थूल-शरीर, इन्द्रियें तथा दृश्य पदार्थ प्रकृति के बनें हुए हैं। प्रकृति जड़ है। अतः इन पदार्थों में चेतना की कमी है। जड़ वस्तुएं न तो स्वयं सुख-दुख भोग सकती हैं और न किसी दूसरे को सुखी या दुखी कर सकती हैं, क्योंकि वे स्वयं सुख-दुःख-विहीन हैं और उनमें गति करने की स्वतः कोई शक्ति नहीं है॥

ज्ञान और सुख का भण्डार जीव है।

मनुष्य शरीर में केवल तीन वस्तुओं का खेल दिखाई देता है— आत्मा, मन और देह। आत्मा मन को जान और गति प्रदान करती है और मन इन्द्रियों द्वारा देह में सारा काम करता है। आत्मा की चैतन्यता से मन चैतन्य प्रतीत होता है। इष्ट पदार्थों की प्राप्ति से मन सुख मानता है, अनिष्ट पदार्थों से दुःख। परन्तु एक ही वस्तु दो जीवों को तुल्य-देश-काल-अवस्था में एक समान रस नहीं देतीं। एक जीव जिस वस्तु से सुखी होता है, दूसरा उसी से दुखी होता है। एक मनुष्य का भोजन दूसरे का विष है। और यह बात ठीक भी है। जड़ वस्तु में तो सुख-दुख पहुंचाने का गुण ही नहीं है। वस्तु जैसी

की तैसी है। भेद केवल मात्र उस स्तर का है जिसके द्वारा शक्ति व्यक्त हो रही है। मनरूपी चश्मों के भिन्न २ रंग एक ही वस्तु को अपने २ काँच के रंग में रंगा हुआ देखते हैं। लाल चश्मा लगाने पर सारे दृश्य-पदार्थ लाल मालूम होते हैं। चश्मा उतार दो, समस्त वस्तुयें अपने असली रंग-रूप में दिखाई देंगी। यदि आत्मा को मन से पृथक कर दिया जावे तो मन काम करना बन्द कर देगा। अतः मन भी एक इन्द्री अर्थात् करण है और शरीर की भांति जड़ स्तर है। वास्तव में सारा ज्ञान और विज्ञान आत्मा में भरा हुआ है। आत्मा स्वयं सुख की भंडार है और वह अपनी चैतन्य धारों के द्वारा, मन-इन्द्री और तन के स्तरों के माध्यम से दृश्य जगत और पदार्थों का ज्ञान और सुख लाभ करती हुई प्रतीत होती है॥

सुख कामना से शक्ति क्रियावती होती है।

क्रियावती होने पर गति-शक्ति की धारें भण्डार से आधार पर आती हैं और अपना क्रियाक्षेत्र स्थापित करती हैं। गति के भण्डार में आकृष्ट हो जाने की दशा में क्षेत्र शून्य हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की 'सुख की कामना' से एक अस्पष्ट सी तरंग पैदा होती है। एक दूसरे से प्रादुर्भूत तरंगें परस्पर टकरा २ कर बड़ी सी लहर बन जाती हैं। जब 'सुख की चाह' की संयुक्त लहरें विस्तृत और वेगवान हो जाती हैं और प्रभु के चरणों को बारम्बार छूती हैं तब स्वभाव से दयालु भण्डार द्रवित हो जाता है और इस क्षोभ से शक्ति की लहरें शून्य-क्षेत्र की ओर धारें फेंकती हैं। इन्हीं धारों का कार्य सृष्टि की रचना है। व्यक्तिगत 'सुख की चाह' की शक्ति आदि-धार की चहल-पहल और गति के साथ अंग-संग सहयोग करके, सारी रचना का ज्ञान प्राप्त करती है॥

आत्मा की शक्ति

आदि-धार का क्रिया-क्षेत्र रचना है। रचना का सारा ज्ञान आत्मा में स्थित है। 'सुख की चाह' भी आत्मा से उठती है। यद्यपि रचना के इस मण्डल पर जहां हम रहते हैं, आत्मा को समस्त ज्ञान तन-मन और इन्द्रियों के स्थूल-स्तरों द्वारा प्राप्त होता है परन्तु, ज्ञाता आत्मा ही है और तन, मन और इन्द्रियें इस मण्डल के स्तर ही हैं। इसके अतिरिक्त आदि-शक्ति आत्मा के द्वारा ही रचना को रूपवान करती है। अतः आत्मा आदि-शक्ति का क्रियाघाट है। बिना आत्मा के न तो आदि-शक्ति ही प्रकट हो सकती है और न उसकी चहल-पहल अर्थात् गति-स्वरूपी रचना और न रचना का ज्ञान ॥

यह सर्व-सम्मत सिद्धान्त है कि समान गुण-कर्म-स्वभाव वाली सत्ताओं का परस्पर मेल होता है। गोल छेद में गोल वस्तु समान नाप की खप सकती है। कोने वाले छिद्रों में गोल वस्तु काम नहीं कर सकती। घड़ी में समान दांते या कटाव वाले चक्के एक दूसरे में सट जाते हैं और मिलकर काम कर सकते हैं। समान घूम-घुमाव वाली लहरें आपस में मिल सकती हैं। क्योंकि आदि-शक्ति धार का आत्मा के साथ मेल और सहयोग होता है अतः यह परिणाम निकालना कदाचित् अनुचित न होगा कि आत्मा में शक्ति के गुण मौजूद हैं। अतः आत्मा शक्ति स्वरूप है ॥

७. माध्यम और गति

माध्यम्

तत्वों की मिलौनी का परिणाम दृश्य रचना और रचना के पदार्थ हैं। परमाणुओं की भिन्न २ क्रमिक अवस्थाओं—स्थूल तथा सूक्ष्म—को तत्व कहते हैं। ये

अवस्थायें पांच हैं—ठोस, तरल, वायव्य, तेजोमय और आकाशीय। जिस वस्तु में संयोगिक शक्ति के कारण परमाणु परस्पर ऐसे दृढ बन्धन में बद्ध हों कि वे किसी भी दवाव से अपने धर्म से न हटें और जिसमें अन्य किसी वस्तु की गति न हो सके, ऐसी तीन नाप वालो परमाणुओं की अवस्था को 'ठोस' कहते हैं। जिस वस्तु में परमाणु अपने दृढ़-बन्धन धर्म को छोड़ कर ऐसी विचलित पकड़ धारण किये हुए हो, जो तनिक से दवाव से द्रवित हो जावें और वस्तु के भाग वस्तु से पृथक हुए बिना ही वस्तु में सहज गति कर सकें, परमाणुओं की ऐसी विचलित दशा वाले पदार्थ को 'तरल' कहते हैं। जिस वस्तु के परमाणु द्रव-धर्म को त्याग कर भार-जनक पृथ्वी की माध्याकर्षण शक्ति से विरक्त और पृथक हो गये हों उसको 'वायव्य' कहते हैं। वायव्य पदार्थों में फैलने और सिमटने की योग्यता होती है। जिस वस्तु के परमाणु फूट कर इतने विलीन हो गये हों कि अपने स्थूल धर्म (ठोस, द्रवित और वायव्य) को त्याग कर एक-दम सन्यस्त हों, वस्तु की इस अवस्था को 'तेज' कहते हैं। वस्तु की ये चार अवस्थायें मनुष्य की चार—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बान-प्रस्थ और सन्यास—अवस्थानों से दूर पास की सदृशता रखती हैं। परमाणुओं के वन्धन मुक्त होकर, अयन अवस्था में पहुंचने को 'आकाशीय' कहते हैं। परमाणु जैसे २—ठोस, तरल, वायव्य, तेजस और आकाशीय स्थूल से सूक्ष्म अवस्थाओं में गति करता है, उसकी स्वतन्त्रता और शक्ति बढ़ती जाती है। आकाशीय अवस्था को शक्ति और स्थूल-प्रकृति का संगम कहते हैं। इसीलिये आकाश तत्व शक्ति का आधार-स्थल है। आकाश तत्व में शक्ति के गुण होने के कारण आकाश के माध्यम से ही सारी स्थूल और सूक्ष्म शक्तियाँ हमारे पास पहुँच पाती हैं॥

स्तरों का प्रभाव

'तेज' के परे की अवस्था 'आकाशीय' है। शक्ति आकाशस्तर पर प्रकट होने पर विद्युत रूप में दिखाई देती है। बिजली में ताप नहीं होता। परन्तु, जैसे ही शक्ति विभक्त परमाणुओं के स्तर में गति करती है, वैसे ही तेज और ताप का अनुभव होता है। इस बात से सिद्ध होता है कि यदि परमाणुओं की विभक्तावस्था का अभाव हो तो ताप का भी अभाव होगा। आकाशीय अयन ताप के परमाणुओं से पृथक हैं। अतः ताप को आकाश तत्व में प्रवेश करने से आकाशतत्व में गरमी नहीं व्यापती अर्थात् अयन ताप के प्रदर्शन में कोई भाग नहीं लेते। आग हवा में जलती है। वायु रहित स्थान में ले जाने से आग बुझ जाती है। ऐसे ही शक्ति के आकाश-तत्व पर गतिमान होने से तुरन्त ही शब्द प्रकट होता है। शक्तिधार केन्द्रित होने पर ताप के बिखरे हुए परमाणुओं को व्यवस्था में ले आती है। और प्रकाश की किरणें, जो आकाश के माध्यम के कारण चारों ओर फैल रही हैं, इस व्यवस्था को आकार के रूप में आंख तक पहुंचा देती हैं। वैज्ञानिक आकाश को, परमाणु-मुक्त होने के कारण, रूपविहीन (निराकार) ही कहते हैं। जब ताप इतना सूक्ष्म हो जाता है कि उसके परमाणु आकाशस्तर पर क्रियावती शक्ति के साथ मेल कर सकें तब रूप का ज्ञान होता है। यदि ताप इतना सूक्ष्म नहीं है तो रूप के स्थान में स्पर्श (सर्दी-गर्मी) का बोध होता है। इन दृष्टान्तों से स्पष्ट हो जाता है कि शब्द, रूप, स्पर्श, रस और गन्ध वास्तव में कोई नई वस्तुयें नहीं हैं। अवस्तुयें हैं। ये सब केवल मात्र एक आदि-शक्ति के ही विभिन्न स्तरों में गति करने के कारण, अनेक विकृत रूप दिखाई दते हैं। स्तरों (माध्यमों) का शक्ति के व्यक्तित्व पर कैसा गहरा प्रभाव होता है, बिल्कुल स्पष्ट है। बिना स्तर के शक्ति प्रकट नहीं हो

सकती। यदि स्तर न हों तो शक्ति गुप्त हो जाती है। भिन्न २ स्तरों से आदि-शक्ति के संयोग द्वारा ही प्रकृति के पञ्चभूत अर्थात् स्थूल-शक्तियाँ प्रकट होती हैं। स्पष्ट है कि जीवात्मा आदि-शक्ति का आधार-स्तर है। शक्ति अपना केन्द्र जीवात्माओं में ही बनाती है। जीवात्मा का आधार-स्तर सूक्ष्मतम-प्रकृति है और सूक्ष्म-प्रकृति का आधार स्थूल-प्रकृति है इस प्रकार अव्यक्त आदि-शक्ति जीवात्मा में केन्द्रित होकर सूक्ष्म तथा स्थूल जगत के रूप में व्यक्त होती है और जीवात्मा सूक्ष्म तथा स्थूल परदों (शरीरों) में लिपटी हुई संसार में अनेकानेक विकृत रूपों में दिखाई देती है ॥

८, दृश्य पदार्थ और सत्व सिद्धि



गति-शक्ति क्या है, ऊपर संक्षेप में, बता दिया गया। अब, असली विषय पर पुनः विचार करना उचित होगा। उपस्थित प्रश्न यह था कि वह कैसा सुख-दुख है, जिसका अभाव या भाव जीव को सुख से नहीं बैठने देता? प्रकृति की सारी शक्तियों का अस्तित्व और व्यक्तित्व जीवात्मा पर निर्भर है। आत्मा के अनेक गुणों में से एक गुण 'चेतना' भी है। जब तक जीव देह में निवास करता है और उसकी चैतन्यधारें देह की समुचित देख-भाल करती हैं। तब तक प्रकृति की सारी शक्तियां परस्पर सहयोग द्वारा काम करती रहती हैं। परन्तु, जैसे ही जीव चोला छोड़ देता है समस्त व्यवस्था अस्त व्यस्त हो जाती है। शक्तियां विद्रोह खड़ा कर देती हैं, और उनके पारस्परिक विरोध के कारण शरीर की तोड़-फोड़ प्रारम्भ हो जाती है। जिस सुख-दुख की जांच करना यहां अभीष्ट है, वह वह सुख-दुख है जिसका अनुभव

जीव को जाग्रत अवस्था में होता है। यह अनुभव जीव को मनके द्वारा इन्द्रियों के माध्यम से होता है। स्वप्न, सुषुप्ति, अचेतनादि अन्य अवस्थाओं में इस माध्यम का अभाव होता है। इन्द्रियां केवल उन वस्तुओं का ज्ञान ज्ञाता तक पहुँचा सकती हैं जो उसी मसाले की वनी हुइ हों जिससे वे इन्द्रियां वनी हैं। इन्द्रियाँ प्रकृति के पंचभूतों—आकाश, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी—से बनी हैं। प्रकृति के पदार्थों को देखने से ज्ञात होता कि वे सब जड़ मसाले की मिलौनी हैं। घटना, वढना, परिवर्तन, रूपों की विचित्रतादि इन वस्तुओं के स्वाभाविक धर्म हैं। 'विकार' प्रकृति का आवश्यक अंग है। अतः प्रकृति की वस्तुओं में जो सुख प्राप्त होता है वह भी परिवर्तनशील, नाशवान (अनित्य), क्षणभंगुर अर्थात् टूटने वाला है, अटूट नहीं है॥

दृश्य-पदार्थों की परीक्षा

दृश्य पदार्थों द्वारा तो दुःखों का आत्यन्तिक अभाव नहीं हो सकता, क्योंकि दुःख अथवा कामना की निवृत्ति हो जाने पर भी उनकी पुनरावृत्ति हुआ ही करती है। जिस वस्तु के संयोग से दुख दूर होता है उसी के वियोग से पुनः वही दुःख उपस्थित हो जाता है। क्षुधानिवृत्ति के पश्चात् भी नित्यप्रति क्षुधा लगती ही रहती है। उन्हीं भोगों की चाह रह २ कर थोड़ी २ देर के पश्चात् पुनः पुनः उठा करती हैं। इन भोगों को प्राप्त करने के लिये बारम्बार बड़े २ दुख और कष्ट उठाने पर भी ये भोग देर तक नहीं रह सकते। यदि किसी भोजन-प्रेमी के सम्मुख स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन उपस्थित भी हो तो भी वह उनको निरन्तर नहीं खा सकता और उसके भोजन का आनन्द नित्य नहीं रह सकता। वरावर खाते रहना मृत्यु को निमन्त्रण करना है। यही दशा अन्य भोगों की है। असल तथा मनमानीअथवा नकली भोगों

यही अन्तर है। प्रेम जितना किया जावे उतना ही बढ़ता है। परन्तु, इन्द्री भोग जितना भी किया जावे उतना ही उससे जी हटता जाता है॥

अविवेक वश बालकगण बालू के घर नित्य बनाते और विगाड़ते हैं। परन्तु, ज्ञानवान मनेष्य ऐसे निर्माण करते हैं जो चिर-स्थाई हों। 'चिर-स्थाई' भी अपेक्षित शब्द है। वास्तविक वस्तुयें तो निर्माण नहीं होतीं। वे तो अविनाशी, अटूट और नित्य ही हैं। गोद का शिशु मा की प्रेमपूर्ण पुचकार, टिटकार और हंसते हुए मुख को देखकर फूला नहीं समाता। नन्हीं अवस्था में बालक चमकीले कंकर, पत्थर, बिल्लोर, सीपी, काष्टादि के टुकड़ों और खिलौनों में सुख लाभ करता है। बाल्यवस्था में पुस्तक पढ़ने और परीक्षा में सर्वोच्च उत्तीर्ण होने में सुखी होता है। अर्धयुवावस्था में साहित्य, संगीत, कला-कौशल का प्रेम उसको व्याकुल किये रहता है। उच्च कक्षाओं में शास्त्रों के विचार, ऐतिहासिक, आन्दोलन, तत्वों के परीक्षण और राजनैतिक विषयों में वह सुख मानने लगता है। युवा होने पर धनोपार्जन और किसी सुन्दर सुयोग्य युवती के प्रेम-पाश में फंसे रहने में ही अपना सौभाग्य समझता है। जैसे २ बालक से जवान होता जाता है पूर्व के भोग उत्तरोत्तर फीके पड़ते जाते हैं। मा की प्रेमपूर्ण पुचकार, पत्थर, खेल-खिलौने, परीक्षायें और पुस्तकें अब उसको सुख का कारण प्रतीत नहीं होतीं। पूर्ववत सुख अब इन वस्तुओं में नहीं मिलता। उसका सारा ध्यान अपनी पत्नी की प्रसन्नता प्राप्त करने में लग जाता है॥

आशा की फुलवाड़ी

पत्नी की प्रेमदृष्टि, मृदुमुसकान और कोमल-क्रीड़ाएं उसको

आनन्दविभोर कर देती हैं। अपनी देवी की परिक्रमा वह निश-दिन 'मनसावाचाकर्मणा' बड़े उमंग और चाव से करता रहता है। कहीं भी हो, कुछ भी करता हो परन्तु प्रियतमे का ध्यान निरन्तर गद्गद किये रहता है। वह उसका मतवाला पुजारी बनने में ही अपने आपको धन्य समझता है। पुस्तकें अब विचारशून्य मालूम होती हैं। कुछ काल उपरान्त, एक सुन्दर सुडौल तथा दिव्य रूपवान बालक के जन्म से उसका घर सुशोभित होता है। आनन्द की लहरें हृदय-समुद्र में वेग से उमड़ने लगती हैं। बच्चा मन को हर लेता है। अब उसका बहुमूल्य समय केवल अपने 'गले के हार' पुत्ररत्न की देख-रेख में व्यतीत होता है। दिन प्रतिदिन उसका ध्यान स्त्री की ओर से कम होने लगता है। कुछ ही काल उपरान्त उसका चित्त अपना निजी-घर-निर्माण करने की ओर आकर्षित हो जाता है। 'निन्यानवें के फेर' में पड़ जाता है। विचार करता है—ये सारी पढ़ाई-लिखाई, सारा सौंदर्य, कुल-प्रतिष्ठा, परिवार आदि बिना अतुल चल और अचल सम्पत्ति के कुछ भी नहीं है। सुन्दर कोठी और बाग़ बग़ीचे के स्वप्न व्याकुल कर देते हैं। रुपया पास नहीं है। अभिलाषा पूर्ति का कोई साधन नहीं दीखता। प्रतिक्षण चिन्तासागर में मग्न है। चिन्ताग्रस्त जीव एक वैज्ञानिक अनुसन्धान में संलग्न है। पूर्ण एकाग्रता में निमग्न है। उसकी हृदयेश्वरी तथा प्रेममूर्ति बालक बाहर से आकर उसके पास खड़े हो जाते हैं। परन्तु वह बिलकुल बेसुध सा मूर्तिवत बैठा हुआ है। उसको पास खड़े हुए अपने प्रेमीजनों का लेशमात्र आभास भी नहीं होता। स्त्री बेचारी धीरे से खटका करती है परन्तु उसको खटके का शब्द भी सुनाई नहीं देता। उसकी चित्तवृत्ति (ध्यान) वहां है ही नहीं। चिन्ता में बावला हो गया है। स्त्री की मधुर मुसकान आज उसको आकर्षित नहीं

करती। बच्चे की मृदु-हठखेलियां आज उसको अच्छी नहीं लगतीं। बात इधर करता है, ध्यान कहीं अन्यत्र है। बात भी ठीक २ नहीं होती। चिन्ता से चेहरा पीला पड़ गया है। आज वह अपने को संसार भर से अधिक दुखी समझता है। बात २ पर झुंझलाता है। अकस्मात उसकी दृष्टि समाचार-पत्र पर पड़ती है। सम्राट की ओर से उसके वैज्ञानिक आविष्कारो के उपलक्ष में चार लाख रुपये के पारितोषिक की घोषणा है। पढ़कर उसके आनन्द का वार-पार नहीं रहता। आनन्दवश वह अपने आसन से उछल पड़ता है॥

उजड़ा वगीचा

कुछ काल में, अर्वाचीन सुख सामग्रियों से सुसज्जित एक विशाल-भवन, बाग़ बग़ीचे सहित निर्माण हो जाता है। आज वह अपने आपको महासुखी ही नहीं समझता वरन् वह जीवन-पर्य्यन्त सुख भोग करता हुआ अनेक दुखियों का जीवन भी सुखी बनाने में अपने को समर्थ जानता है। एक दिन बड़े कमरे में कतिपय सुप्रसिद्ध संगीत विशारदों सहित बैठा हुआ है। बाजे बज रहे हैं, गाना हो रहा है। बाजों की समता और रागों के सुरीले रस-पान में सब मग्न हैं और किसी को तन मन की सुध नहीं है। विचित्र मनोहर समा बंधा है। अकस्मात् कोलाहल तथा रोने-पीटने की चीत्कार सारे आनन्द को फीका कर देती है। सब लोग बाहर की ओर भागते हैं। अब किसी का भी चित्त गाने में नहीं लगता। क्या देखते हैं ? भैय्या जी की कोठी में आग लग रही है। आग बुझाने के समस्त प्रयत्न करते हुए भी आग की लपटें आकाश से बातें करने लगती हैं और देखते ही देखते वह गगन-भेदी विशाल-भवन राख और ईंटों का ढेर हो जाता है। भैय्या

जी की आशाओं का बग़ीचा उजड़ जाता है। इस प्रकार के अनेक अनुभव प्रत्येक जीव के जीवन में नित्यप्रति हुआ ही करते हैं, परन्तु मनुष्य उन पर उस समय तक विचार नहीं करता जब तक ऐसी दुर्घटना अपने ऊपर न बीते। शव ले जाते समय मार्ग में, श्मशान की ओर जाते और लौटते हुए मनुष्य के जैसे गम्भीर भाव होते हैं वे काल की गति से शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, और भूले हुए की भांति मनुष्य फिर उन्हीं नित्य क्रियाओं में पूर्ववत संलग्न हो जाता है। यदि श्मशान वाले भाव मनुष्य के हृदय में अंकित हो जावें तो मनुष्य के कल्याण में देर नहीं लगती।

मायिक भोगों का असली दृश्य

इस दृष्टान्त पर विचार करने से ज्ञात होता है कि—

(१) भोग विलास, बादलों में से चमकने वाली बिजली की भांति चञ्चल और क्षणिक हैं। आयु, आंधी द्वारा बिखरे हुए मेघों की भांति अनिश्चित है। यौवन की किलोलें क्षणभंगुर हैं॥

(२) दुख-सुख वस्तुओं में नहीं है। बिजली जिस-जिस वस्तु में गति करती है उस २ वस्तु को अपना स्वरूप दे देती है। सूर्य्य की किरणें जिस २ स्थान पर पड़ती हैं उस २ स्थान में प्रकाश और धूप होती है। किरणें जहां से खिंच जाती हैं वहां छाँह और अन्धेरा हो जाता है। आनन्द-यात्री जैसे २ एक से दूसरी वस्तु पर 'गति' करता है दुख-सुख परस्पर स्थान परिवर्तन कर लेते हैं। धूप-छांह की भांति सुख-दुख आगे पीछे दौड़ते रहते हैं। अतः संसार के भोगों में स्थिर, अटूट-सुख लाभ नहीं हो सकता॥

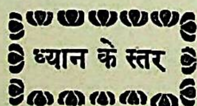
(३) जीव का 'ध्यान (चित्तवृत्ति)' जैसे २ एक वस्तु से

दूसरी वस्तु में गमनागमन करता है वैसे ही वैसे दुख-सुख के आने-जाने का अनुभव होता है अर्थात् 'ध्यान' ही दुख-सुख का कारण है ॥

(४) मनुष्य कौड़ी २ जमा करके कितने परिश्रम और कष्ट के पश्चात् मिट्टी का एक ढेर खड़ा करता है और अपने निर्माण पर आनन्द मनाता है। वह जानता हुआ भी नहीं मानता कि पल भर में माया के सारे महल और कार्य्य मिट्टी में मिल जाते हैं। आंख मिचने पर यहां की कमाई का एक तिनका भी साथ नहीं जा सकता। आयु पर्य्यन्त की व्यवस्था और प्रबन्ध करने वालो ! क्या तुमको अगले पल की भी खबर है ?

(५) तार बिजली का निकास-स्थान नहीं है। जग के भोग आनन्द के केन्द्र नहीं हैं। आनन्द का सूर्य जीव के भीतर चमक रहा है। चमकती हुई वस्तुएं स्वयं सूर्य नहीं हैं ॥

६. ध्यान से सुख-दुख




ध्यान के स्तर

सुख-दुख का अनुभव मनुष्य को साधारणतः दो ही माध्यमों द्वारा प्राप्त होता है—
(i) शरीर तथा इन्द्रियों और (ii) मन द्वारा ॥

आत्मा की धारें मन के स्तर पर उतरती हैं और वहां केन्द्रित हो जाती हैं। मन से चेतना की किरणें ज्ञान-तन्तुओं के द्वारा शरीर के विभिन्न द्वारों पर आती हैं। स्वप्नावस्था में ये किरणें मन के स्तर पर एकाग्र हो जाती हैं। दो मित्रों की देहें नींद में पास ही पास निष्क्रिय पड़ी हैं। उनमें से एक स्वप्न में दूसरे मित्र को क्रोधावेश में जान से मार डालता है। आंख खुलने पर दोनों मित्रों के शरीर स्वप्न वाली घटना को अस्वीकार करते हैं।

ना किसी ने मारा और ना कोई मरा। न तो जीव मरता है और न मारा जा सकता है। इस बात से सिद्ध होता है कि चित्त की धारों के शरीर के घाट से खिंच जाने पर शरीर रूपी स्तर ज्ञान ग्रहण करने के अयोग्य हो जाता है। जिस प्रकार शारीरिक सुख-दुख के अनुभवों में चित्त की धारें ज्ञान-तन्तुओं के द्वारा काम करती है, वैसे ही मानसिक सुख-दुख में संस्कार-भावनाओं के द्वारा कार्य होता है। भावनाओं की धारें मन से सम्बन्ध रखने वाले 'चित्रगुप्त' पर पड़ती हैं और सुख-दुख का अनुभव मन-स्तर पर ही होने लगता है। पारितोषिक की सूचना भैय्या जी को आह्लादित कर देती है परन्तु, आग की दुखी। एक प्रेमी-कुटुम्बी की मृत्यु का मिथ्या तार शोक मग्न कर देता है परन्तु थोड़ी ही देर पश्चात् सच्चा समाचार मिलने पर आनन्द होने लगता है। ज्ञान-तन्तुओं अथवा भावनाओं पर आघात होने से चित्त की धारों के बलात्कार अपने केन्द्र से हटाये जाने की दशा में दुःख, अन्यथा सुख का अनुभव होता है। इन दो स्तरों के अनुभव साधारणतः प्रत्येक मनुष्य को होते हैं। परन्तु, जब चैतन्य धार मन के घाट से भी खिंच जाती है तक मनुष्य को अलौकिक (अत्यन्त प्राकृतिक) अनुभव होने लगते हैं। गाढ़-निद्रा और मूर्छा आदि की दशा में मन भी निष्क्रिय हो जाता है क्योंकि चैतन्य-धार अपने भण्डार में खिंच जाती है। समाधि की ऊंची अवस्थाओं में तो मनुष्य को, बिना तन और मन के घाटों की क्रिया के ही, सहज ज्ञान होने लगता है। इस अवस्था में ज्ञान-शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि उसके द्वारा भावी घटनाओं तथा दूर-देश की बातों को ठीक २ बताया जा सकता है॥

ध्यान
आत्मा और
परम+आत्मा

ध्यान अर्थात् चित्त की धार आत्मा का सार तत्त्व है। आत्मा परम्+परमात्मा की अंश है। परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। अतः आत्मा भी सत्+चित्+आनन्द रूप है। चित्त की धारें आत्मा की किरणें हैं। किरण की छोटी से छोटी रेखा में भी सूर्य्य के ताप और प्रकाशादि गुण उपस्थित रहते हैं। अतः चैतन्य धारों में सत्ता, चैतन्यता और आनन्द का होना अनिवार्य है। सूर्य्य की किरणें स्वतः गरम नहीं होतीं। आकाश-स्तर पर भी उनमें ताप नहीं होता। परन्तु, जब किरणें परमाणुओं के स्तर में प्रवेश करती हैं तब किरणों का अनुभव ताप द्वारा एक अन्धे को भी हो जाता है। प्रकाश हमारे पास सीधा नहीं आता, वरन् स्तरों की वक्रता में से टेढ़े मेढ़े गति करता हुआ नाचता-कूदता आता है। अतः प्रकाश का शुद्धरूप दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार चैतन्य-किरणों का शुद्ध (सत्+चित्+आनन्द) रूप तन और मन के स्थूल स्तरों द्वारा नहीं रहता और शुद्ध आनन्द की झलक के स्थान में, संसार के दृश्य-पदार्थों में सुख दुख की चमक दिखाई देती है॥

आदि-शक्ति
स्थूल-स्तरों के
आधीन नहीं है

इस बात से यह भी सिद्ध हो जाता है कि आदि-शक्ति स्वतन्त्र सत्ता है और उसका व्यक्तित्व प्रकृति के स्थूल-स्तरों के आधीन नहीं है। आदि शक्ति का क्रिया-स्तर आत्मा है। अतः आत्मा भी अपनी क्रिया के लिये इन स्थूल-स्तरों की पराधीनता से स्वतन्त्र है, अर्थात् आत्मा बिना तन-मन के जीवित रह सकती है। इसके विपरीत, तन-मन के स्तरों का अस्तित्व तथा जीवन आत्मा

के आधीन है अथात प्रकृति के स्तर आत्मा की चैतन्यता के बिना जीवित नहीं रह सकते। इसके अतिरिक्त, जैसे २ तन, इन्द्रियां तथा मन के स्तर एक २ करके उतरते जाते हैं वैसे ही वैसे आत्मा की चैतन्य-शक्ति बढ़ती जाती है। आकाश-तत्व से स्वतन्त्र होने पर तो उसका रूप विद्युत से भी अधिक तेजस्वरूप हो जाता है। इस प्रकाश को आंखें नहीं देख सकतीं। आकाश तत्व के परे जब आत्मा के ऊपर से मन के सूक्ष्म स्तर हट जाते हैं तब आत्मा का निःस्तर, निगुण, निर्मल रूप 'सत + चित + आनन्द' के शुद्ध तेज में झलकने लगता है॥

१०—कामनाओं का वास्तविक रूप

सुख-दुख जीव के भीतर हैं।

जीव अटूट-अक्षय-सुख चाहता है। दृश्य-पदार्थों के क्षणभंगुर, नाशवान, मलीन, इन्द्रिय भोगों में अक्षय-सुख कहाँ है? इसके अतिरिक्त दृश्य-पदार्थों का सर्व-देश-काल-अवस्था में मिलना भी सम्भव नहीं। यदि उनकी प्राप्ति सम्भव भी हो तब भी ये पदार्थ 'हेय' ही हैं। एक तो दृश्य-पदार्थों से प्रत्येक दुःख दूर नहीं हो सकते, आध्यात्मिक दुःखों का भी दृश्य-पदाथा द्वारा निवृत्त होना कठिन है, फिर आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखों की कथा ही क्या हा सकती है? दूसरे, इन पदार्थों द्वारा दुःखों का क्षणिक तिरोभाव ही हो सकता है। कारण का नाश न होने से दुःखों से सर्वथा निवृत्ति नहीं मिल सकती। दृश्य-पदार्थों में सुख दुःख है ही नहीं। स्वप्न की अवस्था में इन्द्रियां और देह दोनों बेकार होते हैं और कोई दृश्यपदार्थ भी उपस्थित नहीं होता तब भी इन्द्रियों के भोग और दुःख सुख स्वप्नावस्था में भी वैसे ही अनुभव

होते हैं जैसे कि जागृत अवस्था में। मृत्यु-सम्बन्धी मिथ्या सूचना से दुःख सुख का होना, स्पष्टतया सिद्ध करता है कि इन्द्रियों की शक्ति, उनके रस तथा सुख-दुःख बाहरी दृश्य-पदार्थों में नहीं हैं, वरन् उनसे स्वतन्त्र, आत्मा के भीतर हैं ॥

चैतन्यता भी जीव के भीतर है।

जब जीवात्मा देह से निकल जाती है तब शरीर की शुद्ध जड़ता स्पष्टतया देखी जा सकती है। आत्मा के चले जाने पर शरीर और इन्द्रियें निष्क्रिय हो जाती हैं और उनमें कोई भी शक्ति दुःख सुख भोगने की दिखाई नहीं देती। चैतन्यता आत्मा का स्वाभाविक गुण है। आत्मा की चेतना से इन्द्रियें और शरीर चैतन्य दिखाई देते हैं ॥

सब काम मन से उत्पन्न होते हैं।

कार्य्य जगत में प्रकट होने से पहले सारे काम मन में उत्पन्न होते हैं। बिना अग्नि के धुआं नहीं हो सकता। बिना मन के विचार नहीं हो सकते। विचार शून्य मन एक क्षण नहीं रह सकता। बिना विचार कोई कार्य्य नहीं हो सकता। सब से पहले मन किसी विषय का ध्यान करता है। कर्मों के चित्रगुप्त का एक चक्र मन-मुकुर के सम्मुख निरन्तर घूमता रहता है। किसी विषय का ध्यान करते ही तद्विषयक संस्काररूपी चित्र, चित्रगुप्त की चित्रशाला में से तुरन्त उसकी ओर चुम्बक के प्रभाव की भांति प्रेरणारूपी बटन दबाते ही गति करता है और चक्र घूम कर मन के सम्मुख चित्र को उपस्थित कर देता है। प्रत्येक विषय की जड़ में राग और द्वेष निवास करते हैं। यदि चित्र इष्ट वस्तुओं

के हैं तो जीव की उन २ वस्तुओं में प्रवृत्ति (लगाव) हो जाती है और यदि अनिष्ट पदार्थों के हैं तो निवृत्ति (हटाव) हो जाती है। इसी के अनुकूल मन संकल्प करता है। संकल्प के प्रत्यक्षरूप को कामना, इच्छा या चाह कहते हैं। चाह पर्य्यन्त समस्त क्रिया गुप्त अर्थात् मानसिक होती है। उसके पश्चात् इन्द्रियें इष्टपदार्थ को प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगती हैं और कार्य्य प्रारम्भ होता है। यदि यत्न में सफलता होती है तो इष्टवस्तु की प्राप्ति से जो अनुकूल तरंग मन के भीतर चलती है तो उसको 'सुख' कहते हैं। 'सुख' के कारण जब जीव का बन्धन उस विषय में इतना अधिक हो जावे मानो उसने उसकी बुद्धि ही हरली है तो उसको 'मोह' कहते हैं। यदि प्रयत्न में सफलता न हो अथवा वस्तु प्राप्त करने के पश्चात् बलात् छीन ली जावे तो बन्धनों के कटने से अथवा आघात के कारण जो प्रतिकूल तरंग मन के भीतर प्रवाहित होती है उसको 'दुःख' कहते हैं। दूसरे शब्दों में इच्छित विषय के केन्द्र पर चित्त की धारों की एकाग्रता को 'सुख' और बलपूर्वक विक्षेप को 'दुःख' कहते हैं। दुःख की अवस्था में 'क्रोध' उत्पन्न हो जाता है। काम, क्रोध, और लोभ ही नरकपुरी के तीन फाटक हैं॥

षट् मुखी दर्पण

विद्वान लोग मन को दो प्रकार का बताते हैं—स्थूल और सूक्ष्म। स्थूल-मन इन्द्रियों की भांति जड़ मसालेका बना हुआ है और अन्य प्राकृतिक वस्तुओं की भांति कारण में लय हो जाता है। सूक्ष्म-मन वह शक्ति है जिसके सहयोग से स्थूलमन कार्य्य करता हुआ दीखता है। सूक्ष्म मन में विषयों के भोगने की शक्ति होती है परन्तु उसका जीवन तथा उसकी स्थिति आत्मा पर निर्भर है। सूक्ष्म-मन

निर्मल प्रकृति का बना है। अतः सूक्ष्म जगत का ज्ञान तो स्वतः प्राप्त करता है परन्तु, स्थूल जगत का ज्ञान स्थूल-मन द्वारा प्राप्त होता है। सूक्ष्म-मन षट्-मुखी दर्पण है। इस दर्पण के छः अंश हैं। प्रत्येक अंश प्रकृति के उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्मतम मसाले से बना है। प्रत्येक अंश सूक्ष्म जगत की छः प्रकार की वस्तुओं का ज्ञान पृथक २ प्राप्त करता है। जिस समय यह दर्पण बहिर्मुखी अर्थात् स्थूल जगत की ओर मुड़ा हुआ होता है, उस समय स्थूल-मन के माध्यम से इस दर्पण पर असंख्य कोटि सांसारिक पदार्थों के चित्र एक-पल के लक्षांश में झलक जाते हैं। दर्पण के भिन्न २ अंश अपने २ विषय प्रवृत्ति, शब्द, रूप, स्पर्श, रस और गन्ध-के संस्कारों को ग्रहण करते हैं। 'जगत्' शब्द गम् धातु से बना है। जो चलने वाला हो, चलायमान हो, गतिशील हो उसको 'जगत्' कहते हैं। ऐसे चलायमान जगत् के असंख्य चञ्चल पदार्थों के चलते-फिरते चित्रों की झलक पड़ने से मनमुकुर का मुख अत्यन्त चञ्चल मालुम पड़ता है, क्योंकि ये पदार्थ प्रचण्ड-वेग से गति करते हैं अतः मन-मुकुर की परिधि से शीघ्र ही बाहर चले जाते हैं। ऐसी दशा में, इन पदार्थों पर ध्यान की धार को देर तक स्थित रखना असम्भव है और, ऐसा न होने से अटूट-अक्षय सुख इन मलीन पदार्थों में कैसे मिल सकता है?

क्या यही सुख है?

यही कारण है कि हमारी चाह जल्दी २ एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर उसी भांति यात्रा करती हुई दिखाई देती है जिस प्रकार चलती हुई रेलगाड़ी में बैठे हुए यात्री की दृष्टि चलते-फिरते वृक्षादि पर गति करती है। साँसारिक सुख पानी के बुदबुदे की भाँति क्षणिक होता है। सुख का अभाव दुःख को पैदा कर देता है।

सुख को पुनः प्राप्त करने की आकाँक्षा जीव को व्याकुल कर देती है। अनेक कष्ट और दुःखों से प्राप्त होता है। प्राप्त को रक्षा करना अत्यन्त कठिन और दुःखप्रद है। सुख का वियोग असह्य दुःख देता है और पुनः प्राप्ति की अभिलाषा पुनः दुःखी और व्याकुल कर देती है। दुःख का एक चक्र समाप्त होता ही है कि दूसरा चक्र तुरन्त गति करने लगता है। क्या यही साँसारिक सुख है जिसकी प्राप्ति के लिए दुनियाँ दीवाने की तरह चक्र काट रही है? क्या क्षण में आने वाला, क्षण में जाने वाला, घटने-बढ़ने वाला, दुःख से प्राप्त, दुःख से रक्षित, 'दुःख चक रूपी' अक्षय-सुख यही है जिसको प्राप्त कराने की प्रतिज्ञा प्रवृत्तिमार्ग करता है? प्रश्न होता है—'क्या अर्वाचीन विज्ञान के चमत्कारों ने जीव को अपने ध्येय की ओर तिलमात्र भी अग्रसर किया है'? उत्तर--'नहीं'। वैज्ञानिकों ने युगान्तरों के प्रयत्न और अन्वेषणों के पश्चात् संसार के कष्ट-वर्धक और विध्वंसकारी साधनों को अवश्य चमसीमा पर पहुँचा दिया है। इसके अतिरिक्त उनके निर्माणों ने क्षणिक सुख के साधनों को अनेक मनोहर, चमक-दमक वाले रंग-विरंगे रूप देकर माया की कभी न बुझने वाली प्यास को इतना प्रचण्ड कर दिया है और जीव को बहिर्मुखी सुख के गोरखधन्धों में ऐसी बुरी तरह फाँस दिया है कि इस उलझी हुई जटिल भूल भुलैयों से बाहर निकल आना जीव की शक्ति के परे हो गया है। डाक्टरों की संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है। चिकित्सा शास्त्र उन्नति और कुशलता के शिखर पर पहुंच जाने का दावा करता है। परन्तु रोग और रोगियों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। यही नहीं, उनके भली-भांति निश्चित तथा सुप्रतिष्ठित सिद्धान्तों में निरन्तर संशोधन हो रहे हैं और अभी अनेकों संशोधनों के होने की सम्भावना है। ज्योतिष विशारदों

के परिणाम आज तक अपूर्ण हैं। नित्यप्रति विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में शुद्धियां की जाती हैं और उनके गणित में परिवर्तन किये जाते हैं। जब वे इन्द्रियाँ, जिनपर प्रकृति के मसाले के संवेदनात्मक दूरदर्शक तथा सूक्ष्मदर्शक और श्रावक-यन्त्र लगाये जाते हैं, स्वयं ही सूक्ष्म-मंडलों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकतीं, तब ये बेचारे जड़-यन्त्र रचना का सही २ ज्ञान कैसे दे सकते हैं? सारांश यह है कि वही खोज ज्यों की त्यों निरन्तर चालू है। हां, इतना अन्तर अवश्य है कि विज्ञान द्वारा असंख्य कोटि उलझनों की उत्पत्ति के कारण जीव की बहिर्मुखी वृत्तियां इतनी संवृद्ध हो गई हैं कि अटूट-सुख की प्राप्ति के मार्ग में अनेक बाधाएं ही उपस्थित नहीं हैं वरन् उन्होंने जीव को अपने ध्येय से योजनों दूर फेंक दिया है॥

कामना और अविवेक

जीव की कामनाएं ही उसके सुख दुख का कारण हैं। मन में इच्छा को स्थान देना ही जगत् की वस्तुओं की दासता स्वीकार करना है। कामना के पश्चात् मोह, जीव को, मायिक पदार्थों में बांध देता है। प्रत्येक कर्म जो जीव के बन्धनों को दृढ़ करते हैं जीव को सुखी करते हैं। जो कर्म जीव के बन्धनों को काटते हैं वे जीव को उसकी कामनाओं से दूर करते हैं और जीव को दुख देते हैं। इन बंधनों से जीव सांसारिक पदार्थों में जकड़ा हुआ है। जैसे ही जीव ऊपर की ओर उड़ना चाहता है उसकी प्रत्येक श्रृङ्खला झटके के साथ उसको अपनी ओर खींचती है। इस प्रकार सुख की खोज में प्रवृत्तिमार्ग पर चलने वाले जीव श्रृङ्खलाओं में बांधे जाते हैं और उनकी प्रत्येक खोज की पुनरावृत्ति पूर्व कड़ियों में संयुक्त होकर उनके बन्धनों को और भी अधिक दृढ़ कर देती हैं। यदि रेल-

गाड़ी का यात्री भागते-दौड़ते पदार्थों के पीछे २ भटकने लगे तो वह अपने ध्येय के निकट कभी भी नहीं पहुंच सकता। बारम्बार बन्धन और कारागार का जीवन जीव को कारागार का स्थाई निवासी बना देता है। ऐसे जीवों को कारागार के सम्बन्ध और सम्बन्धियों से मोह हो जाता है। वे उनसे वियुक्त होने के दुख को सहन नहीं कर सकते और इसलिए निजघर के बाहर ही सदा पड़े रहते हैं। सुख की खोज में दुःख चक्र की परिक्रमा को प्रत्येक प्राणी भली भांति जानता और मानता है परन्तु वह इन चक्रों के भ्रमण में इतना अभ्यस्त और सिद्धहस्त हो गया है कि जानते बूझते भी अनजाने ही उन चक्रों में फंस जाता है। इसी को 'अविवेक' कहते हैं। अतः 'अविवेक' ही कामनाओं का कारण है। अविवेक ही रचना का हेतु है और अविवेक का विध्वंस ही इन बन्धनों से मुक्ति लाभ करने का साधन है॥

११ स्वर्ग प्राप्ति और सत्वसिद्धि

स्वर्ग की झलक

'यन्न दुःखेनसम्भिन्न' यन्नग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वःपदास्पदम्'।

अनेक विवेकशील विद्वान स्वर्ग सुख को उत्कृष्ट बताते हैं। कोई २ विद्वान स्वर्ग को एक लोकान्तर मानते हैं। कोई २ स्वर्ग को जीवन की एक अवस्था बताते हैं। इनके मत में 'स्वर्ग' वह सुख है जिसमें दुःख का लेशमात्र सम्मिश्रण नहीं है जो तुलना में किसी भी सुख से निम्नकोटि का नहीं है, जिसके भोग में कभी अन्तर नहीं पड़ता और जिसमें अभीष्ट यथेष्ट प्राप्त हो। परन्तु स्वर्ग सुख भी सावधिक हैं। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'। शास्त्रों के अनुसार पुण्यकर्मों के फलभोग की अवधि

पर्य्यन्त जीव स्वर्ग में निवास करता है और पुण्यकर्मों की समाप्ति होने पर उसको पुनः मर्त्यलोक में वापिस आना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, देवता भी एकदम सुखी नहीं माने जा सकते। देवराज इन्द्र को भी नित्य नये शत्रुओं का सामना करना पड़ता है। वहां भी दैवासुर संग्राम छिड़ा हुआ है। स्वर्गसिद्धि के लिये यज्ञ और तप का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। विधान में तनिक सा भी अन्तर पड़जाने से यज्ञों की सिद्धि तो कैसी उल्टा 'प्रत्ययवाय' दोष होने के कारण पतन का भागी होना पड़ता है। यदि सिद्धि हो भी जावे तो स्वर्ग की प्राप्ति नित्य तथा स्थाई नहीं। अतः स्वर्ग में भी आत्यान्तिक सुख नहीं है॥

प्रवृत्ति मार्ग में अथाह की थाह कहाँ है

जीव अखण्ड-अक्षय-सुख चाहता है। परन्तु, खण्डित तथा आवागनात्मक भोगों में ऐसा सुख कहां है? ऐसा ज्ञात होता है कि जीव किसी ऐसी वस्तु की खोज में है जो ना तो तन द्वारा दृश्य जगत में मिलती है और ना मन द्वारा स्वर्गप्राप्ति में। यह निश्चय ही कोई ऐसी वस्तु है जो तन व मन के पूरे स्तरों से परे की वस्तु है। इसके अभाव को 'पिण्ड और ब्रह्माण्ड' की वस्तुयें पूरा नहीं कर सकतीं। प्रवृत्ति-मार्ग अत्यन्त कष्टदायक है। इसमें सुख क्षणभंगुर है। इस मार्ग पर चलने से केवल सांसारिक-स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थों की बनावट, मसाले और गुणों में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो इसकी इच्छित वस्तु से तुलना की जा सके। ऐसा ज्ञात होता हैं कि जीव किसी भोगी हुई वस्तु की याद करता है और उसके न मिलने से व्याकुल है। भूला हुआ जीव अन्धे की भांति संसार के अन्धकार में टटोलता फिरता है। वह प्रत्येक वस्तु को पकड़ता है और जाँच करता है।

न्यूनाधिक सदृश पदार्थों की प्राप्ति से क्षणिक सुख लाभ करता है परन्तु, उनके उत्तरोत्तर परिणामों को देखकर तथा खोई हुई वस्तु को न पाकर फिर दुखी होता है और उसी खोज में पुनः संलग्न हो जाता है। माया के भंवर की चपेट में पड़कर जीव चौकड़ी भूल जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह सुख जिसकी खोज में प्रत्येक जीव गुप्त या प्रकट रूप से मतवाला सा हो रहा है, जिसके स्वाद की झीनी याद जीव को निरन्तर व्याकुल बनाए रहती है, अवश्य कोई ऐसे सुख का केन्द्र है, जो उसको प्रतिक्षण अपनी ओर बलपूर्वक आकर्षित करता रहता है। वास्तव में, जीव एक ऐसी वस्तु की खोज में है जिसका अभाव सांसारिक वस्तुओं' से कदापि पूरा नहीं हो सकता। जब ज्ञेय वस्तु प्राप्त नहीं होती तो वेचारा उसी अन्धेरी कोठरी का चक्कर काटने लगता है और प्रत्येक वस्तु को पुनः टटोलता और जाँचता है। परन्तु 'चौरासी' की 'भूलभुलैयां' से बाहर निकलने का मार्ग नहीं पाता। इस प्रकार सांसारिक भोगों के चक्कर में चकराया करता है और जब होश (चेतना) में आता है तो अपने आपको कोल्हू के बैल की भांति ठीक उसी स्थान पर पाता है जहां से उसने प्रस्थान किया था। सुख की खोज ज्यों की त्यों उपस्थित है। किसी वस्तु का अभाव निरन्तर वर्तमान है। सुख दुख तो जीव के अन्दर हैं, परन्तु उनकी खोज बाहर की जाती है। बहिर्मुखी होने से प्रवृत्तिमार्ग बाहर की ओर ले जाता है। उस पर यात्रा करने वाला अन्तर्मुख नहीं है अतः भीतर नहीं पहुंच सकता। वस्तु कहीं और है, ढूढते कहीं और हैं। प्रेमीजनो ! भगवान् के प्यारे किसी पहुंचे हुए धुर-भेदी को साथ में लो तब कहीं पता पा सकोगे।

"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥"

१२—चैतन्य-शक्ति और स्थूल-शक्तियां

आत्मा और आनन्द

आत्मा को स्थूल तथा सूक्ष्म स्तरों से जैसे २ स्वतन्त्रता मिलती जाती है वैसे ही वैसे आत्मा का निःस्तर शुद्ध प्रकाश व्यक्त होता जाता है और मनुष्य की चेतना बढ़ती जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा अपने जीवन और क्रिया के लिये तन-मन इन्द्रियों के आधीन नहीं है। अर्थात् चोला त्यागने पर भी आत्मा जीवित रहती है। देह धारण करने और चोला छोड़ने पर जीव का आदि या अन्त नहीं होता। जीव, अनादि, अनन्त और नित्य है। शास्त्रानुसार प्रकृति को 'सत्' कहते हैं, जीव को 'सत्+चित्' और परमात्मा को 'सत्+चित्+आनन्द'। जैसे ताप के अङ्ग-सङ्ग प्रकाश रहता है वैसे ही चैतन्यता के साथ २ आनन्द का प्रकाश होना आवश्यक है। शुद्ध आनन्द और शुद्ध चैतन्यता का एक साथ रहना ही रचना की जान है। अतः उस प्रभु को रचना की जान (सत्ता), चेतना और आनन्द कहते हैं। आत्मा परमात्मा की अंश है। अंश और अंशी में समगुणों का होना अनिवार्य है। अतः उस आनन्द के सूर्य की आत्मारूपी चैतन्यकिरण में सत्ता और चैतन्यता के अतिरिक्त आनन्द की झलक है। निस्सन्देह, आत्मा प्रभु की अंश है। परन्तु समस्त आत्म-अंशों का योगफल प्रभु नहीं है। आत्मा स्थूल-शक्तियों का भण्डार है। आत्मा ही से स्थूल-शक्तियों का प्रादुर्भाव है। आत्मा ही के सहारे वे स्थित हैं, और उचित समय पर उसी में समा जाती हैं। परन्तु आत्मा सारी स्थूल-शक्तियों का योगफल नहीं है। बूंद, धार, नाला, दरिया और समुद्र सब पानी के रूप हैं, परन्तु इन सारों का योगफल समुद्र नहीं है। निस्सन्देह, ये

सब समुद्र के अंश अवश्य हैं और एक बूंद में भी पानी (H_2O) के सब गुण मौजूद हैं। ऐसे ही आत्मा भी अपने सच्चिदानन्द भण्डार से आती है, उसी प्रभु की सत्ता से जीवित है और उचित समय पर अपने भण्डार में ही लौट जाती है। स्पष्ट है कि सत+चित् (आत्मा) का स्वाभाविक गुण 'आनन्द' है ॥

१३—परमानन्द और सत्वसिद्धि

आनन्द-सागर की गोद

सुख जीव के अन्दर है। जीव आनन्द-स्वरूप है। आनन्दस्वरूपी आत्मा परमानन्द में रहती है। स्पष्ट है कि जीव 'सुख' नहीं चाहता, वरन् 'निर्मल-अक्षय-सुख' चाहता है, अर्थात् जीव उस 'सच्चिदानन्दघन शुद्ध-बुद्ध-मुक्त' की लगन में व्यस्त है। परमानन्द की प्राप्ति ही जीव और जीवन का लक्ष्य है। प्रेमीजनो! हम और आप निश्चय ही अनेक वार साथ रह चुके हैं। जाग्रत अवस्था में हम सब उस सच्चिदानन्द सागर की गोद में एक साथ खेलते रहे हैं। अपनी भूल के कारण आज हम एक दूसरे को नहीं पहचानते। अविवेक-वश आज हम परस्पर सहानुभूति नहीं रखते और अपरिचितों की भांति एक दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं। परन्तु, उस प्रेमाम्बुधि की झीनी याद, जिसकी गोद में हम नित्य क्रीड़ा करते रहे हैं, जीव को बराबर बनी रहती है। वही याद जीव को बेचैन (व्याकुल) किये हुए है। जल से छिकी हुई मछली की भांति व्याकुल जीव नित्य ही अपने प्रीतम की याद में तड़पता रहता है। प्रवृत्तिमार्ग की प्रत्येक निराशा और प्रत्येक अनुभव निवृत्तिमार्ग का अगला पद बन जाता है। इस सोपान पर चढ

कर जीव अपने प्रीतम की ओर नित्य ही आगे बढ़ता जा रहा है ॥

प्रेम सरोवर के मोती

परन्तु, उस प्रेमसरोवर को न पाकर जीव मार्ग के ताल-तलैयों में ही निवास करता है। भूख से व्याकुल जीव (हंस) मोतियों के स्थान में ताल के कंकरों को ही मोती समझ कर निगल जाता है और समझता है कि अब उसकी भूख शान्त हो जावेगी। परन्तु थोड़ी ही देर पश्चात् पेट में वेदना होने लगती है और वेचारा जीव दर्द से व्याकुल दहाड़ें मारने लगता है। सन्त धुर-घर के वासी हैं। उनकी स्वतन्त्रता और पहुंच प्रत्येक लोक में है। उनकी आत्मा सचेत है। उनके दिव्यनेत्र खुले हुए हैं और उनके पास दिव्यदृष्टि है। अतः सन्तों का ज्ञान रचना का निःस्तर तथा यथार्थज्ञान है। जीव पर दया करके तत्वदर्शी सन्त बताते हैं---'ऐ जीव, सावधान हो, अविवेक रूपी निद्रा को त्याग। तेरा निजघर परमानन्द धाम है। 'ताल' तेरा देश नहीं है। कागवृत्ति छोड़, तू हंस है। ऐ पृथ्वी के यात्री निजघर की सुधकर। तेरा आहार मोती और अमृत है। हंस ही दूध से जल को छाँटते हैं। कंकर खाने से तेरी भूख शान्त न होगी वरन् तेरे पेट में पीड़ा होजायगी। अजीर्ण और वमन उसको निकाल कर ही फेंकेंगे। कंकरों से भूख की अग्नि बुझेगी नहीं। प्रतिदिन बढ़ती ही जावेगी। विवेकीजन, दूसरों के घर की आग देख कर अपने घर की रक्षा का प्रबन्ध पूर्व से ही कर लेते हैं। प्रतिकार तथा निरोध चिकित्सा की अपेक्षा श्रेयस्कर है। प्रेमी, तुम उस आनन्दसागर के मोतियों की खोजमें हो, जहा से विमुख होकर तुम यहाँ आये हो। अब भी सम्मुख हो जाओ। वही शाश्वत जीवन और सर्वज्ञान का भण्डार है। परमाणुओं

के इस मण्डल पर वे दिव्य मोती कहाँ हैं ? विमुख मार्ग छोड़ो, अभिमुख यात्रा करो। चलो, निजघर वापिस चलो। प्यारे घर की याद, परमानन्द के मोतियों की स्मृति तुझे बेचैन किये हुए है। 'सुबह का भूला शाम को घर आवें—उसे भूला नहीं कहते। चेत, देख तेरी आत्मा की सूई उस एक—नित्य---परमानन्द की ओर ध्रुवीयभाव से सदा संकेत करती हुई काँप रही है। प्रत्येक दिशा में भटकती हुई, व्याकुलता से एक की ओर ही स्थिर भाव से संकेत कर रही है। भूले हुए यात्री, आत्मा की ओर दृष्टिकर। साँकेतिक आत्मप्रेरणारूपी सूई तुझ भूले हुए को नित्य ही सही मार्ग दिखा रही है ?

१४—परमानन्द क्या है ?

एक का प्रतिविम्ब

यदि जीव मन के षटमुखी दर्पण को बीहमुख न रख कर अन्तमुख घटाकाश की ओर मोड़े दे तो दर्पणमें चञ्चल और चलायमान अनेक पदार्थों के दृश्य के स्थान में एक स्थिर आकाशस्वरूप का प्रतिविम्ब पड़ेगा और दर्पण तल पर चञ्चलता के स्थान में शान्ति दिखाई देगी। दूसरे शब्दों में आत्मा अपने प्रीतम की झलक पाकर परमानन्द को प्राप्त करेगी। मन केवल मायिक-वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है। परन्तु, वह परमेश्वर निर्मल चैतन्य-आनन्दस्वरूप है। उसकी काया में माया की छाया तक नहीं है। अतः मन के दर्पण को अन्तमुख उलट देने पर मन अपनी चञ्चल क्रिया बन्द कर देता है और आत्मा अपना स्तर-विहीन कार्य प्रारम्भ करती है और अपने प्रीतम का दर्शन पाकर अपने को कृतकृत्य समझती हैं, अपने भाग्य को सराहती है और अपने बिछुड़े परमानन्द को पाकर उसके पवित्र चरणों में लग जाती है।

परमानन्द कैसे मिल सकता है ?

दो वस्तुओं के परस्पर मिलन को 'योग कहते है । उनके विछोह को 'वियोग' कहते हैं। संसार 'योग-वियोग' रूप है। माता के वक्षः स्थल पर क्रीड़ा करने वाला शिशु, पति के अङ्क में सोहागिनी पत्नि, कुबेर के धन को मिट्टी के कण के तुल्य व्यय करने वाला धनी, उनके वियोग में पंखविहीन पक्षी की भाँति छटपाता हैं। सांसारिक योग के पीछे वियोग लगा हुआ है। 'योग' में 'वियोग' नहीं होता। क्षणिक योग चिरस्थायी नहीं हो सकता। एकमात्र परमानन्द का योग नित्य-योग है। शेप सब योग क्षणिक हैं। अतः त्याज्य हैं। भगवत्-योग के केवल तीन साधन हैं—कर्म, ज्ञान और भक्ति। इन त्रय का समुच्चय ही योग का एकमात्र पथ है। दूसरा कोई अन्य मार्ग नहीं है। सत्संग भक्ति का प्रथम सोपान है। बिना सतगुरू के सत्संग नहीं होता। सत्संग से परमार्थ की ओर अनुराग बढ़ता है। सत्संग से छिपी हुई कोर-कसरों, मायिक वासनाओं तथा भोग-विलासों के प्रति सच्ची घृणा, पश्चाताप तथा प्रायश्चित के भाव जाग्रत हो जाते हैं। सतगुरू भक्ति से भगवत् प्रेम प्रस्फुटित होता है। 'अनु' कहते हैं 'पीछे को' और 'राग' कहते हैं 'प्रेम-आसक्ति' को। अपने प्रेमी के 'पीछे' २ प्रेमविह्वल फिरने को 'अनुराग' कहते हैं। अनुराग विभोर भक्त खाते-पीते, चलते-फिरते, सोते-जागते अपने प्यारे के पीछे २ सुमरण द्वारा परिक्रमा करते रहते हैं। ऐसा करने से चञ्चल मन 'एकाग्र' हो जाता है। सतगुरू भक्ति से प्रीतम की प्रीति और प्रतीति बढती है। प्रेम-भक्ति होने से अभ्यास की कमाई की उमंग पैदा होती है। सच्ची उमंग भक्त को अभ्यास में बिठाती है। सच्ची प्रीति-प्रतीति और एकाग्रता उन भावनाओं के समूह अर्थात्

गुनावनों के संग्राम को जो कमाई के समय भक्त के अन्तर में प्रचण्डवेग से होने लगते हैं, शान्त कर देती है। अभ्यास ठीक होने से वियोग दूर हो जाता है और सच्चिदानन्द दयाल से योग हो जाता है। 'एक' कहते हैं 'सच्चिदानन्द दयाल' को और 'अग्र' का अर्थ है 'सम्मुख' होना। अतः 'एकाग्रता' भक्त को सच्चिदानन्द दयाल के सम्मुख रखती है। भक्तों का प्रधान विघ्न 'मन की चञ्चलता' है। विषय स्वयम् चञ्चल हैं। चञ्चल के ध्यान से केवल चञ्चलता प्राप्त होती है और नित्य स्थिर के ध्यान से स्थिरता। 'मन' की उत्पत्ति 'अहंकार' से होती है। 'तू-तू, मैं-मैं' करने वाला 'अहंकार' है। 'अहंकार के स्तर में ढकी हुई आत्मा अपने शुद्धस्वरूप को नहीं देख पाती और योगसिद्धि में विघ्न-बाधा डालती है। 'अहंकार' की चिकित्सा 'नमस्कार' है। 'तू-तू मैं-मैं' करना अहंकार है। 'नमःनम करने को 'नमस्कार' कहते हैं। 'नमः' शब्द का असली रूप 'न मम' है। वैदिक व्याकरण के अनुसार अन्तिम 'म' का विसर्ग कर देते हैं। 'न मम, न मम'—मैं मेरा नहीं हूं, मेरा कुछ नहीं है—का प्रवाह-स्रोत 'अहंकार' के पर्वतों को बहालेजाता है। 'मैं मेरा नहीं हूं, मेरा कुछ नहीं है'---इस प्रकार जपते २ भक्त---'मैं तेरा हूं, यह सब कुछ तेरा है' अर्थात् अपना सर्वस्व सच्चिदानन्द दयाल के चरणों में सम्पूर्ण रूप से समर्पण कर देता है और भगवान के साथ युक्त हो जाता है। चैतन्य नाम के जाप से मन वशीभूत होजाता है। और आत्मा की सुषुप्त-शक्तियां स्फुरित होजाती हैं। इन शक्तिशाली पंखों के बल से आत्मा रूपी हंस चैतन्यस्वरूप के पास उड़जाता है। सच्चे जाप से वह तड़प पैदा होती है जिससे आकर्षण के वेग के कारण स्थूलता झड़ने लगती है और उचित

निर्मलता प्राप्त होते ही चैतन्यस्वरूप का दर्शन होता है। चैतन्य स्वरूप के दर्शन से वह शक्ति आविर्भूत हो जाती है, जिससे परमार्थी विघ्न बाधाओं से छुट्टी मिल जाती है और अन्तरी साधन सफलता पूर्वक बन पड़ता है। असली साधन इसी स्थान से प्रारम्भ होता है। पूर्व के अनुष्ठान केवल-मात्र अधिकार प्राप्त करने के साधन हैं और असली अभ्यास के सहायक-अंग हैं। यहां से अन्तरी सत्संग आरम्भ होता है जिसकी सफलसिद्धि से भक्त सुधबुध भूल जाता है और देह में रहता हुआ विदेह होजाता है। देह में रहता हुआ नित्य ही चौबीसों घण्ठे भगवत सत्संग में उपस्थित रहता है और चोला छोड़ने पर सच्चिदानन्द के चरणों में निवास पाता है॥

निवृत्तिमार्ग जीव को कहां पहुँचा सकता है ?

मन की स्थिरता अर्थात् चित्त की एकाग्रता को आनन्द कहते हैं। आत्मा स्वतः समस्त भोगों, शक्तियों, ज्ञान और आनन्द का स्रोत है। जब तक तन और मन की क्रियाएं चालू हैं, तब तक जीव सुख दुख लाभ करने में व्यस्त है। सुखदुख स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थों के संयोग से मन के भीतर होते हैं। यदि मन की क्रिया को वन्द करना सम्भव हो तो सुखदुख का आना जाना बन्द होसकता हैं। परन्तु, 'मन' मानसिक क्रिया का यन्त्र हैं। मन प्रवाह से अनादि हैं। संकल्प-विकल्प मन की स्वाभाविक क्रिया है। अतः नित्य होने से मन की क्रिया वन्द नहीं हो सकती। जगत कर्म की मूर्ति है। कर्म दो प्रकार के होते हैं—सकाम और निष्काम जिन कर्मों के अन्तरस्थ विषय कामना रखी हो वे 'सकाम-कर्म'

कहाते हैं। सकाम-कर्म जीव को सुख-दुख के बन्धन में डालते हैं और भक्त को भगवन्त से दूर करते हैं परन्तु विना कामना के न कोई कर्म हो सकता है और न सृष्टि की चहल-पहल रह सकती है। अतः कर्म तो प्रकृति स्वयं करा रही है और सदा ही कराती रहेगी। कर्म बन्द नहीं हो सकते और इसलिये कामना भी बन्द नहीं हो सकतीं। अतः चित्त को विषय-कामना की ओर से मोड़-कर तथा एक मात्र भगवत चरण प्राप्ति में चित्त (कामना) को संयुक्त करके समस्त कर्म करता रहे। इस प्रकार जीवन का प्रत्येक क्षण, एक सच्चे सेवक की भांति, केवल मात्र भगवान भी प्रसन्नता प्राप्त करने में व्यतीत करे और, कोई भी काम ऐसा न करे जिससे भगवान की अप्रसन्नता का भागी होना पड़े। भगवान कामना से किये हुए कर्मों को ही 'निष्काम कर्म' कहते हैं। अर्थात् विषय-कामना-विहीन परन्तु भगवत्प्रसन्नता प्राप्ति की कामना-सहित कर्म 'निष्काम-कर्म' हैं। भगवती भागीरथी के प्रवाह के समान चित्त वृत्तियों के प्रवाह को कौन रोक सकता है। परन्तु, वृत्तियों की धारों के द्वारों को, नहरों के फाटकों की भांति विरोध करने से नहरों (वृत्तियों) के प्रवाह को गंगाजी (सतगुरू+सत्संग) की ओर प्रवाहित करके, गंगा के प्रवाह के अंग-संग उस सच्चिदानन्द-सागर में विलीन किया जा सकता है। सतुगुरू और भगवान में अन्तर नहीं है। "स एष पूर्वेषामपि गुरू कालेनानवच्छेदात्"। केवलमात्र भगवान और वे भाग्यवान् पुरुष जिन्होंने सचमुच दुई को मिटाकर एकता प्राप्त करली है 'सतगुरू' कहाने के अधिकारी हैं॥

"ख़ासाने ख़ुदा ख़ुदा न बाशन्द।
लेकिन अज़ ख़ुदा जुदा न बाशन्द॥"

इस पाखण्ड और दिखावे के युग में केवल भगवान को ही सतगुरू जानकर परमार्थ-यात्रा करना अधिक कल्याणकारी है। यदि भाग्य से किसी पुरुष-सतगुरू के दर्शन प्राप्त हो जावें और सन्देहों की पूर्ण निवृत्ति हो जावे तो उनके करण कदापि न छोड़े। निदान, समस्त आदि-ऋषि, आप्त तथा महापुरुष मनुष्य चोले ही में हुए हैं और भविष्य में भी इसी योनि में होंगे। यदि जिज्ञासु, साँसारिक-कामनाओं को त्याग कर एकमात्र परमार्थी कामना लेकर गुरुओं के पास जाय तो उसे शीघ्र ही सत्गुरू मिलेंगे। ऐसे सच्चे सेवक का मार्ग प्रदर्शन स्वयं भगवान करते हैं। सांसारिक कामना वाले पुरुष ही धूर्तों के जाल में फंसते हैं। आनन्द, तन-मन तथा सुख-दुख के परे की वस्तु है। वास्तव में, आनन्द, जीव के भीतर है। ध्यान की धारों को मन के घाट के परे समस्त अनित्य वस्तुओं को छोड़कर, केवल एक-नित्य वस्तु पर स्थापित करने से मन निश्चल हो जाता है और सारी क्रिया आत्मा स्वतः करने लगती है। जब आत्मा की आनन्दस्वरूपी चैतन्य-धारें एक नित्य वस्तु (परमानन्द) पर पड़ती हैं तब जीव को निर्विकारी एकरस परमानन्द प्राप्त होता है। चंचल मन की चंचल गति केवल ऐसे ध्रुव स्थिर परमानन्द स्वरूप में स्थिरता को प्राप्त हो सकती है। परमानन्द की प्राप्ति जीव को उस 'निर्बन्ध' (स्वतन्त्र') के साथ संयुक्त कर देती है और इस प्रकार जीव साँसारिक बन्धनों से मुक्त स्वतन्त्रता पूर्वक विचरता है। स्पष्ट है कि 'निर्मल-अक्षय-सुख' की प्राप्ति केवल अन्तर्मुखी मार्ग से सम्भव है। अतः जीव का पवित्र धर्म है कि सब संशय-भ्रमों को त्याग कर-सांसारिक वासनाओं से विमुख होकर, तन-मन को समस्त संकल्प

विकल्प सहित प्रभु के चरणों में समर्पित करके केवल शरीर-यात्रारूपी कर्म करता हुआ प्रीति तथा पूर्ण प्रतीति पूर्वक परम् पिता की मौज में प्राणीमात्र की सेवा करता हुआ जीवन व्यतीत करे। प्राणीमात्र की सेवा ही सत्गुरु तथा परमपिता की सच्ची सेवा है ॥

१५—गति का उपहार

प्रीतम से योग

रचना की चहल-पहल के अन्तरस्थ 'सुख की कामना' कार्य कर रही है। जीवस्वयं आनन्द का सत्व है। आनन्द स्वरूप में परमानन्द की कामना स्वाभाविक प्रेरणा है। जीव की 'सुख-कामना का आन्तरिक अर्थ 'अक्षय-सुख' (परमानन्द) है कामना शनैः शनैः व्याकुलता का रूप धारण कर लेती है। जब परमानन्द के प्रेम की तड़प व्यग्ररूप धारण कर लेती है तब परमानन्न में दया की हिलोर उमड़ने लगती है। प्रेम में अद्भुत आकर्षण है। चुम्बक अपनी धारें पहले क्षेत्र में फेंकता है और क्षेत्र में स्थित वस्तुओं में से केवल अधिकारी (लोहे के टुकड़ों) को वर्ण कर लेता है। तदनन्तर अधिकारियों के विरोधी-भावों को अपनी धारों के प्रवाह से तद्रूप कर लेता है। तद्रूप होने पर चुम्बक और लोहा, प्रीतम तथा प्रेमी, प्रेमी तथा प्रेमिका की भांति एक दूसरे के वियोग में तड़पने लगते हैं और एक दूसरे के चारों ओर चक्कर लगाने लगते हैं। विश्व दया की तेजोमयी धारों के कारण ही प्रत्येक अणु में स्थित अनेक ऋणात्मक परमाणु (इलेक्ट्रन्स) सामान्यतः १३५० मील प्रति सैकिण्ड के वेग से केन्द्रस्थित धनात्मक परमाणु (प्रोटन) की परिक्रमा नित्य करते रहते हैं। धनात्मक परमाणु भी ऋणात्मकों को अपनी ओर प्रायः २०० मील प्रति सैकिण्ड के वेग से खींच रहा है। परन्तु मनुष्यों की विषयवासना की भांति ऋणात्मक-परमाणुओं की प्रचण्ड-वेगवती परिक्रमा

एक दूसरे को एक दूसरे से दूर स्थापित रखे हुए हैं और दोनों में योग नहीं होने देती। संसार की मर्य्यादा का ध्यान रखते हुए उपयुक्त समय पर जब प्यारा प्रीतम, प्रेमी-भक्त को अपने अत्यन्त निकटस्थ पाता है तब, जैसे चुम्बक लोहे को प्रीति-पूर्वक आकर्षण कर लेता है वैसे ही परम दयाशु प्रभु भक्त को अपनी अनन्त सामर्थ से अपनी ओर खींचकर वियोग को मिटा देते हैं। मनुष्यों के ऐसे आकर्षण को 'मुक्ति' कहते हैं, और सृष्टि के इस प्रकार आकर्षण को 'महाप्रलय' कहते हैं। आपत्तियां प्रभु की महती-दया की सांकेतिक हैं। इन्हीं के द्वारा वियोग को स्थापित रखने वाली बाधायें दूर होती हैं। अतः वे धन्य हैं क्योंकि इन क्षणिक दुःखों के गर्भ में वेदना के पश्चात् पूर्ण आनन्द-सन्तति का दर्शन निश्चय है। प्रेमिका का स्थान प्रेमी के हृदय में है। वे वियुक्त कैसे रह सकते हैं। वियोग से योग होता हैं और ऐसे योग में आनन्द के 'चार चांद' जटित होते हैं। जो वस्तु जितने ही अधिक कष्टों के उपरान्त प्राप्त होती है वह वस्तु उतनी ही अधिक सुन्दर और प्रिय मालूम होती है। वियोग दूर होते ही परमानन्द की हिलोर तड़पते हुए भक्तों को चरणों से चिपटा लेती है और परमानन्दरूपी अमृत का परमुपहार जीव को कृतकृत्य कर देता है। इस आकर्षण और हिलोर के उपरान्त चैतन्य-तेज की धारों का व्यक्त होना अनिवार्य है। तेज की इन प्रचन्ड-धारों के कारण शून्यक्षेत्र में रचना की कलियां खिल पड़ती हैं और रचना रूपवान हो जाती है। इसके अतिरिक्त, वो आत्मायें जिनमें चेतना की न्यूनता के कारण आकर्षण की न्यूनता अर्थात् गरुत्व की अधिकता होती है और जो अपनी इन न्यूनताओं के कारण प्रीतम के चरणों तक नहीं पहुंच सकतीं, इन मनोभावी धारों से महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त करती हैं।